रूप रास

चक्रधर ग्रन्थमाला—बारहवाँ पुष्प

रम्य रास

लेखक

काव्य कानन, मायाचक्र, रत्नहार, जोशे फ़हरत
आदि के रचयिता

रायगढ़-नरेश श्रीमान् राजा चक्रधर सिंह

प्रकाशक

साहित्य-समिति, रायगढ़

सितम्बर, १९३४

प्रथम बार, २०००

मूल्य साधारण सं० १।)
राज संस्करण २।)

प्रसन्नता सीमा पार कर गई। संसार में उनके समान और कौन भाग्यशाली था ! उनका यह सौभाग्य-मद और मान भगवान् को बिलकुल न रुचा। उनके कल्याण की इच्छा से भगवान् एकदम अन्तर्धान हो गए।

गोपियाँ अधीर हो उठीं। वे विच्छिन्न सी हो इधर उधर श्रीकृष्ण को ढूँढ़ने लगीं। कहीं न मिले तो वृक्ष लताओं ही से पूछना शुरू कर दिया। बट, पीपल, कुरबक, अशोक, तुलसी, मालती, मल्लिका, जाती, यूथिका इत्यादि सभी से पूछ डाला परंतु कहीं पता न लगा। इस प्रकार कृष्णान्वेषण-कातर होकर वे कृष्णात्मिका बन गईं और फिर उसी भावना में भर उठने के कारण उन्हीं की लीला का अनुकरण करने लगीं। पूतना चरित, शकट चरित, गोवर्धन चरित, कालीनाग चरित इत्यादि सभी चरितों का आचरण किया जाने लगा।

जब इस तरह तन्मयता पुष्ट हुई तब भगवान् के पद-चिह्न सामने दिखाई पड़ने लगे। उन्होंने देखा और पहिचाना। साथ ही उन्होंने यह भी देखा कि उन चिह्नों के साथ ही साथ किसी गोपी के भी पद-चिह्न पड़े हुए हैं। वे आगे बढ़ीं। पद-चिह्नों के निरीक्षण से उन्हें विदित हुआ कि उस गोपी के साथ भगवान् ने अनेक प्रकार की श्रृंगार कलायें की थीं। कुछ देर बाद वह सखी भी रोती बिलखती उन्हें मिल गई। बात यह थी कि विशेष सम्मान पाकर जब उसे भी गर्व हो आया और उसने बड़ी शान से कहा, "देखो जी, मैं पैदल नहीं चल सकती। मुझे ले चलना है तो लाद कर ले चलो।" तब भगवान् ने कन्धे झुका कर कहा, "आइए, तशरीफ़ ले आइए।" और तुरंत अदृश्य हो गए। बस, अब सब की सब फिर यमुना किनारे पहुँचीं क्योंकि घर का तो उन्हें अब ध्यान तक न आता था।

वहाँ जाकर उन्होंने भगवान् की स्तुति करना प्रारम्भ किया। वे बोलीं, "भगवन् ! हम लोगों को इस प्रकार मार कर तुम्हें क्या मिलेगा ? तुम तो जगन्मङ्गलकारी हो और तुम्हींने हमारे हृदयों में यह प्रेम भाव उत्पन्न किया है। फिर इस समय हमें यहाँ इस प्रकार छोड़ जाना क्या तुम्हें शोभा देता है ? तुम जब गोचारण के लिये जाते हो तब भी हम व्यथा-व्यथित हो जाती हैं; फिर अब जब इस प्रकार इस कर्कश अवनी पर भटक रहे हो तब, सोचो, हमारी क्या अवस्था हो रही होगी ! भगवन्, क्यों नहीं इसका ध्यान करते ? क्यों नहीं आकर दर्शन देते ?" गोपियाँ इसी प्रकार कह कह कर खूब रोने लगीं।

भगवान् आखिर मुस्कुराते हुए प्रकट हुए। सहसा सब मुमूर्षु गोपियों में प्राण से आगए। वे एकदम उठकर उनसे जा चिपटीं। किसी ने हाथ पकड़ा किसी ने पैर। किसी ने अङ्गाश्लेष किया, कोई दूर ही से ध्यानावस्थित हो गई। सब के ताप दूर हो गए। सभी ने मानों मन चाही सिद्धि प्राप्त की। भगवान् उन सब को लेकर मनोज्ञ पुलिन पर पहुँचे। वहाँ गोपियों ने अपनी सुरम्य साड़ियाँ बिछा दीं और उन पर भगवान् को पधरा कर पूछा, "प्रभो ! कुछ तो ऐसे हैं जो भक्ति के प्रतिफल में अनुरक्ति दिखाते हैं, कुछ ऐसे हैं जो विरक्ति के प्रतिफल में अनुरक्ति दिखाते हैं और कुछ ऐसे हैं जो दोनों के बदले विरक्ति ही दिखाते हैं। यह क्या बात है ?" भगवान् इस प्रश्न का रहस्य समझ गए। फिर भी समझाते हुए उन्होंने कहा "प्रिय गोपिकाओ ! जो भक्ति ही पर

अनुरक्ति दिखावें वे स्वार्थी हैं और जो विरक्ति पर भी अनुरक्ति अथवा भक्ति दिखावें वे निःस्वार्थ स्नेही माता पिता के समान सच्चे सुहृद् हैं। जो भक्ति के प्रतिफल में भी विरक्ति दिखाते हैं वे या तो उच्चातिउच्च आत्माराम आप्तकाम हैं या नीचातिनीच अकृतज्ञ गुरु-द्रोही हैं। मैं जो भक्तों के प्रति विरक्ति सी दिखाया करता हूँ वह केवल उनकी भाव-पुष्टि के लिए। तुम्हारे साथ भी मैंने वही किया है। तुम्हें खिन्न न होना चाहिए क्योंकि वास्तव में तो मैं तुम्हें कभी भूल ही नहीं सकता। जिस साहस के साथ तुमने लोक रीति की दुर्जर श्रृंखला को तोड़ा है वह क्या सामान्य बात है ?

गोपियाँ यह सुन कर परम सन्तुष्ट होगईं। इसके बाद फिर रास-मण्डल सम्प्रवृत्त हुआ। योगेश्वर भगवान् ने अनेक रूप धारण कर लिए और इस प्रकार मिथुनी भूत गोपीकृष्ण रम्य रास-क्रीड़ा में विभोर होगए। वलय, नूपुर, किंकिणी आदि की मधुर ध्वनि तथा भाँति भाँति के पदन्यास भुजविक्षेप भ्रूभङ्ग कटि संचार आदि से वह रास और भी अधिक कान्त बन गया। भगवान के स्वर में स्वर मिला कर गोपियों ने वह सङ्गीत लहरी प्रवाहित की जिससे समग्र संसार भर उठा। आकाश से सपत्नीक देवगण पुष्प वृष्टियाँ करने लगे। देवाङ्गनाएँ गोपियों से डाह सा करने लगीं। गोपियों ने इस समय मनमाने आनन्द का उपभोग किया। अङ्ग सञ्चालन से थक कर कोई पार्श्वस्थ कृष्ण के कंधों पर टिक रहीं, कोई उनके कर-कञ्ज अपने वक्षःस्थल पर लेकर तृप्त होगई, किसी ने उनके मुख के साथ अपना मुख जुटा दिया।

स्थल विहार में थक जाने पर जल विहार शुरू हुआ। वहाँ भगवान ने मत्त गजराज के समान सानन्द विहार किया। और इस प्रकार शरत्कालीन संयोग श्रृंगार के जितने अङ्ग उपाङ्ग हैं। सब का पूरा पूरा सुरस चखाया। भगवान् आत्माराम थे—योगेश्वर थे—आत्मरत थे। उन्होंने "आत्मन्यवरुद्ध सौरतः" होकर ही श्रृंगार प्रदर्शन किया था। इसलिए वह क्रीड़ा ठीक उसी प्रकार थी जिस प्रकार बालक दर्पणों पर पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बों के साथ क्रीड़ा किया करता है।

वह रात्रि ब्रह्मा की रात्रि हो गई। निसर्ग आनन्द-मग्न होकर निश्चल हो गया था। फिर रात ढले कैसे ? ख़ैर, जब परमात्मा की इच्छा हुई तब रास समाप्त हुआ और गोपियों को अनिच्छा पूर्वक घर जाना पड़ा। वहाँ भगवान् की माया से गोप लोग यही देख रहे थे कि उनकी गोपियाँ तो उन्हीं के पास हैं। इसलिए यह रहस्य किसी ने जाना किसी ने जाना ही नहीं। यह वह रहस्य है जिसे श्रद्धा के साथ कहना सुनना चाहिए। क्योंकि ऐसा करने से धीर मनुष्य शीघ्र ही अपना हृद्रोग दूर कर पराभक्ति प्राप्त कर लेता है।

कथा तो इतनी ही है परन्तु इसी कथा के भीतर शुकदेव स्वामी ने दो जबरदस्त शंकाओं का समाधान भी कर दिया है। पहली शंका तो गोपियों के सम्बन्ध की है और दूसरी कृष्ण के सम्बन्ध की। राजा परीक्षित की ओर से ये शंकाएँ उठवा कर शुकदेव स्वामी ने इनका उत्तर बड़े उत्तम प्रकार से दिया है। कई गोपियाँ श्रीकृष्ण को ब्रह्म भाव से न देखकर कान्त भाव ही से तो देख रही थीं और सामान्य औपपत्य की भावना ही से तो उनके पास आई थीं फिर उनका भी कल्याण कैसे हो गया ? इसके उत्तर में शुकदेव स्वामी ने कहा है कि वह औपपत्य भी प्रेम भाव के कारण भगवान् में तन्मयता प्राप्ति का सहायक ही हुआ। मोक्ष का साधन है ईश्वर-तन्मयता और

तन्मयता का साधन वही श्रेष्ठ है जो अपने को रुचे। उसके लिए विधि-निषेध के बन्धन में बँधा रहना बुद्धिमानी नहीं। जब द्वेष भावना से ही शिशुपाल आदि कृष्ण-तन्मयता प्राप्त करके मुक्त होगए तब औपपत्य भावना से कृष्ण तन्मयता प्राप्त करके गोपियाँ क्यों न मुक्त होंगी ? यह तो हुआ पहली शंका का समाधान। दूसरी शंका में यह कहा गया कि जब ईश्वर ने धर्म संस्थापन के लिए अवतार लिया तो इस औपपत्य को प्रश्रय ही क्यों दिया ? इस का उत्तर यह है कि ईश्वर के कृत्य सामान्य मनुष्यों की विधि-निषेध की कसौटी पर नहीं कसे जा सकते। ईश्वर का विभुत्व तो यही बताता है कि वे ही गोपियों के पतियों के अन्तरात्मा थे। इस विचार से गोपियाँ उन्हीं की स्त्रियाँ हुईं। फिर उनके साथ गोपियों का औपपत्य किस प्रकार माना जा सकेगा ?

इन दोनों शंकाओं में यह तो निश्चित रूप से मान ही लिया गया है कि श्रीकृष्ण जी परब्रह्म परमात्मा के पूर्ण अवतार थे। इतना मान कर ही ये शङ्काएँ उठाई गई हैं। आधुनिक समय में लोग यही पूछने लगेंगे कि हम कृष्ण को भगवान् ही कैसे मान लें ? इसके उत्तर में तो कई पृष्ठ रंगे जाने चाहिएँ जिसके लिए न तो यहाँ स्थान ही है और न समय। फिर भी संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जो सामान्य शरद्रात्रि को ब्रह्म रात्रि (एक हज़ार चतुर्युगियों वाला समय) बना सकते हैं, जो योग माया से गोपियाँ बना कर गोपों के पास रख सकते हैं, जिन की क्रीड़ा देखने के लिए देव गण विमानों पर बैठ कर आसकते हैं और पुष्प बरसा सकते हैं उन्हें हम ईश्वर अथवा परमात्मा क्यों न मानें ? यदि यह कहा जाय कि ये सब बातें झूठ हैं तो फिर समझ लीजिए कि सम्पूर्ण रास ही झूठ है क्योंकि आख़िर जिन ग्रन्थों में रास का ज़िक्र है उन्हीं में, उसी रास के साथ, इन बातों की भी चर्चा है। फिर क्या कारण है कि हम एक अंश को सत्य और दूसरे को मिथ्या मान लें ? मनुष्य के पैमाने से ईश्वर को नापने का हमें कोई अधिकार नहीं।

रास पञ्चाध्यायी कोई इतिहास प्रधान ग्रन्थ नहीं है। वह तो भावुकों की सामग्री है। इस सामग्री में काव्यकला की दृष्टि से भी पर्याप्त महत्व भरा है। पहली बात तो यह है कि इसमें शृंगार रस का अच्छा परिपाक हुआ है और शृङ्गार साहित्य के प्रायः सभी प्रधान अंग भली भाँति व्यक्त कर दिए गए हैं। दूसरी बात यह है कि इस कथा के बहाने भक्तिरस का भी पूरा पूरा और सुन्दर विवेचन कर दिया गया है। तीसरी बात यह है कि समाधि भाषा में रचित होने के कारण इसके आधिभौतिक, आधिदैविक, आध्यात्मिक आदि सभी तरह के अर्थ हो सकते हैं। पद-लालित्य देखिए, काव्यालङ्कार देखिए, अर्थ-गौरव देखिए, मनोभाव विश्लेषण देखिए, सभी अङ्ग तो भरपूर हैं। इतना होते हुए भी उसमें रास का वह अनुपम और अपूर्व सन्देश है जिसने रास पञ्चाध्यायी को अमर बना दिया है।

विश्व में जिधर देखिए रास ही तो हो रहा है। आधिभौतिक जगत् में इतिहास प्रसिद्ध रास की बात छोड़ देने पर भी हम देखते हैं कि सूर्य, चन्द्र, तारे, मेघ, समुद्र आदि सब रास ही कर रहे हैं। नक्षत्रों का संगीत भाग्यवान् ही सुनते हैं—चर्म श्रुतियों से नहीं वरन् भाव श्रुतियों अथवा मानस श्रुतियों से। जहाँ सुव्यवस्थित स्थिति गति है वहीं रास है। अखिल ब्रह्माण्ड सुव्यवस्था पूर्ण स्थिति गति से ओत-प्रोत है। इसलिए समग्र संसार रासमय है। आधिदैविक जगत् में चैतन्य सत्ता और उसकी

शक्तियाँ अपनी सुव्यवस्थित स्थिति गति कर रही हैं। संक्रम और प्रतिसंक्रम को अथवा विकास और ह्रास को हम भगवान् का रास तथा उनका प्रादुर्भाव और तिरोभाव न कहें तो क्या कहें ? आध्यात्मिक जगत् में सहस्रदल कमल वृन्दावन है जहाँ भगवान् स्थित हैं। कुण्डलिनी को हम राधा कह सकते हैं। अन्य नाड़ियाँ व्रजनारियाँ हैं। अथवा यों कहिए कि जीवात्मा राधा है और परमात्मा कृष्ण। इन दोनों की शेष सब शक्तियाँ अन्य गोपियाँ हैं। ऐसे अद्भुत रास का रहस्य खोलना रास पञ्चाध्यायी का ही काम है। इसीलिए वह अमर काव्य है और उसका वर्ण्य विषय एक अमर सन्देश है। भगवान सच्चिदानन्द हैं—सत्य, शिव, सुन्दर हैं। उनका सच्चिद्भाव अथवा सत्यत्व और शिवत्व तो अनेक प्रकार से वर्णित हुआ है परंतु आनन्द भाव अथवा सुन्दरत्व यदि कहीं भली भाँति व्यक्त किया जा सका है तो वह इसी रास में। शायद इसीलिए इसी रास के कारण भगवान् श्रीकृष्ण अंशावतार न कहे जाकर पूर्णावतार माने जाते हैं।

भागवत की इस कथा के अनुकरण पर अन्य ग्रन्थों में भी रास का उल्लेख हुआ है। देवी भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण, गर्गसंहिता, विष्णु पुराण, वासुदेव रहस्य आदि ग्रन्थों में भी इसका ज़िक्र है। भाषा में सूरदास, नन्ददास, व्रजवासीदास आदि सज्जनों ने रास पर अपनी क़लम उठाई है और बहुत कुछ लिखा है। कई ग्रन्थों में तो रास का वर्णन रास पञ्चाध्यायी से भी बहुत अधिक विस्तृत रूप में किया गया है। परंतु इतना होते हुए भी पञ्चाध्यायी अब तक अनूठी है और कोई काव्य अब तक उसका मुक़ाबिला नहीं कर सका है। दूसरे काव्यों की ओर इसीलिए ध्यान न देकर मैंने रास पञ्चाध्यायी ही को अपना आदर्श चुना है।

मैंने देखा कि हिन्दी के अनेक कवियों ने रास को बहुत विकृत रूप दे रक्खा है और उसे केवल पार्थिव शृंगार का एक उच्छ्वास मात्र बताया है। संस्कृत के आचार्य लोग रास पञ्चाध्यायी का असली रहस्य प्रकट करने में कुछ उदासीन से दिखे। इसलिए यह आवश्यक जान पड़ा कि मैं अपनी अल्प मति के अनुसार इस महत्वपूर्ण विषय का वास्तविक रूप हिन्दी प्रेमियों के सम्मुख रखने की चेष्टा करूँ। इसी प्रेरणा के परिणाम स्वरूप ये छन्द पाठकों की भेंट किए जा रहे हैं। यदि पाठकों को इन छन्दों में कुछ काव्यत्व मिला तो ठीक ही है अन्यथा मैं समझूँगा कि इसी बहाने भगवत चर्चा हो गई।

"रम्य रास" पञ्चाध्यायी का शाब्दिक अनुवाद नहीं है। यह उसका स्वतंत्र अनुवाद भी नहीं है। उसे पढ़कर मन में जो भावनाएँ आईं सो इन छन्दों में क्रम-बद्ध कर दी गई हैं। इसीलिए कई स्थलों में शब्दानुवाद और भावानुवाद विद्यमान रहते हुए भी अनेक स्थल ऐसे मिलेंगे जो पञ्चाध्यायी से सर्वथा विभिन्न भी होंगे।

कथा प्रसङ्ग में परिवर्तन-प्राप्त मुख्य स्थल ये हैं:—(१) रास में केवल वे ही गोपियाँ आईं जो कात्यायनी व्रत में श्रीकृष्ण को पतिभाव से वर चुकी थीं और जिनके इसी भाव को पुष्ट करने के लिए भगवान् ने चीर हरण लीला की थी। न इन्हें किसी ने रोका और न कोई हताश हो मरी ही। (२) श्री राधिका जी का दाम्पत्य विलास ज़रा अधिक स्पष्ट रूप में, विरहातुरा गोपियों

के वर्णन के साथ ही, लिख दिया गया है। उस वर्णन में सम्भव है "नीवि मोक्ष" जैसे शब्द पढ़कर पाठक चौंक पड़ें और 'अश्लील ! अश्लील !' पुकार उठें। उन से निवेदन है कि श्रृंगार पक्ष में वे अमरुक बने हुए जगद्गुरु शङ्कराचार्य के "मदकल-मदिराक्षी नीवि मोक्षो हि मोक्षः" सदृश पद तथा भक्ति पक्ष में साधु स्वामी रामतीर्थ के "हो जा नंगी बुरका जामा और बदन तक दे उतार। देख ले फिर एक दम में किस तरह मिलता है यार।" सदृश शेर स्मरण कर लें। यदि भाव उच्च हैं तो केवल ऐसे शब्द अश्लीलता द्योतक कदापि नहीं हो सकते। (३) व्रजेश संस्तुति अथवा गोपी गीत में सौकुमार्य और माधुर्य के बदले दैन्य भाव ही की विशेष अभिव्यक्ति हुई है। (४) गोपगणों ने गोपियों को अपने ही पास देखा अथवा नहीं इस पर वाणी मौन है। क्योंकि यदि गोपों ने उन्हें रोका ही नहीं तो उन्हें गोपियों को अपने पास देखने की आवश्यकता भी न थी। (५) अन्त में श्रद्धा और माहात्म्य सूचक वाक्य के बदले प्रश्न सूचक "कहाँ ?" कहकर ऐतिहासिक स्थूल रास के अभाव और दिव्य सूक्ष्म रास के सर्वतोभाव की ओर काव्यमय ढङ्ग से संकेत किया गया है।

ये परिवर्तन अच्छे हुए हैं या बुरे इसका निर्णय तो मैं पाठकों पर ही छोड़ता हूँ। परंतु यहाँ इतना अवश्य लिख देना चाहता हूँ कि मैंने जान बूझ कर ये परिवर्तन नहीं किये। भावों की उमङ्ग में ये आपही आप हो गए। यदि अच्छे बन पड़े हों तो भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा है। यदि बुरे हुए हों तो मेरा दोष।

रास पञ्चाध्यायी में राधा का स्पष्ट नामोल्लेख नहीं हुआ है। कई लोग इसका कारण यह समझते हैं कि शुकदेव स्वामी भक्तिपक्ष में श्रीराधिकारानी को अपना गुरु मानते थे और गुरु का नाम लेना शिष्यों के लिए अनुचित है। इसीलिए उन्होंने उस विशिष्ट गोपी के लिए, जो श्रीकृष्ण के साथ अन्तर्धान हुई थी, "अनयाराधितोनूनं भगवान् हरिरीश्वरः" कह कर इशारे से बता दिया है कि ये ही राधा थीं। जो कुछ भी हो। परन्तु दूसरे ग्रन्थों के देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे ही राधा थीं। वे दूसरी गोपियों से श्रेष्ठ तो थीं ही परन्तु साथ ही देवी-भागवत, ब्रह्मवैवर्त पुराण आदि में उन्हें सवश्रेष्ठ शक्ति; परमात्मा का वाम भाग; उमा, रमा, ब्रह्माणी से भी उत्तम बताया गया है। वे ही रास मण्डल की अधीश्वरी कही गई हैं। इसलिए उनका स्पष्ट नामोल्लेख करके उनके सम्प्रयोग श्रृंगार को जरा विस्तार के साथ लिख देना किसी प्रकार अनुचित नहीं हुआ ऐसा कहा जा सकता है।

यद्यपि रास की प्रायः सब गोपियों ने श्रीकृष्ण की कान्तभावना से उपासना की थी परन्तु फिर भी धर्म संस्थापक भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल राधाजी ही के साथ वास्तविक दाम्पत्य दिखाया है। ये राधा स्वकीया थीं कि परकीया इस विषय पर भी बहुत वाद-विवाद चला है।

कुछ लोगों का कहना है कि राधाजी अतिमन्युक नामक किसी नपुंसक गोप की पत्नी थीं और श्रीकृष्ण की ओर वे परकीया का सा प्रेम रखती थीं। परन्तु ब्रह्मवैवर्त पुराण और गर्गसंहिता आदि में श्रीकृष्ण के साथ उनके साङ्गोपाङ्ग विवाह का वर्णन है। इसलिए वे निस्सन्देह स्वकीया ही कही जा सकती हैं। जो लोग इन्हें परकीया मानते हैं वे केवल कल्पना के माधुर्य के लिए। बात यह है कि स्वकीया की अपेक्षा अक्सर परकीया में प्रेमासक्ति प्रबल रहती है। क्योंकि इसी प्रेमासक्ति के

कारण तो वह लोकमर्यादा और धर्मबन्धन को काट फेंकने की हिम्मत कर जाती है। जो इस प्रकार लोकवाह्य होकर प्रेमासक्ति दिखावे वह उस अंश में अवश्य अनुकरणीय है।

राधाजी को परकीया मानने का एक और भी कारण है। ज़रा कृष्ण, रुक्मिणी और राधा के नामों पर ध्यान दीजिए। कृष्ण का अर्थ है आकर्षणकारी। रुक्मिणी का अर्थ है सुवर्णमयी—लक्ष्मी-संपत्ति। राधा का अर्थ है आराधना—भक्ति। परमात्मा परम आकर्षणकारी हैं क्योंकि संसार उनकी ओर खिंचता है। परन्तु उन्हीं की सुवर्णमयी माया अपनी मनोमोहनी रोचकता के कारण शिशुपाल सरीखे प्रबल वीरों का भी मन अपनी ही ओर खींच रखती है। इतना होते हुए भी उस माया पर किसी का स्वामित्व नहीं होने पाता। हठात् भगवान् उसका अपहरण कर लिया करते हैं। इधर राधा अथवा भक्ति तो भक्तों ही की वस्तु ठहरी--उन्हीं के हृदयों में बसने वाली चीज़ ठहरी। फिर भी वह अपना तादात्म्य भगवान् ही से चाहती है न कि मानव हृदयों से। भगवान को भी माया की अपेक्षा भक्ति निश्चय अधिक प्यारी है। इसी लिए स्वकीया रुक्मिणी के पति होते हुए भी वे परकीया राधा के साथ अपना नाम जुड़ा रखना पसन्द करते हैं। रुक्मिणीकृष्ण न कहलाकर राधाकृष्ण कहलाने का यही रहस्य है। भगवान के साथ भक्ति का (राधा का) जिस प्रकार अभिन्न तादात्म्य हो सकता है उस प्रकार माया अथवा लक्ष्मी का (रुक्मिणी का) कदापि नहीं।

अन्य गोपियों को यदि हम चाहें तो मानव हृदय की अन्य भावनाएँ—दया, क्षमा, उदारता आदि मान सकते हैं। समग्र रास-मण्डल इस प्रकार हृदयस्थ अन्तर्यामी के प्रति बढ़ी हुई समग्र भावनाओं का लीलाक्षेत्र बन जाता है। यदि हम चाहें तो रासमण्डल को मोक्ष-धाम मान कर गोपियों को मुमुक्षु के रूप में देख सकते हैं। ईश्वरीय प्रेरणा से वे मोक्ष धाम के लिए अग्रसर होती हैं और स्वयं भगवान की मायामयी बातों के चक्कर में भी न आकर अभीष्टसिद्धि प्राप्त कर ही लेती हैं। जब पूर्व वासनाओं के कारण अहङ्कार—संकीर्ण व्यक्तित्व—की भावना में पड़ कर वे सब कुछ खो देती हैं तब वियोग-ज्वाला से रस को और भी पुष्ट करके वे अपना वह अहंकार जड़ ही से नष्ट कर देती हैं। इस प्रकार चित्त शुद्ध होने पर जब भगवत्प्राप्ति होती है तब प्रणिपात, परिप्रश्न और सेवा से वह तत्वबोध होता है जिसके फल में उन्हें अखण्ड मोक्ष धाम सदा के लिए प्राप्त हो जाता है।

बारीकी से विचार किया जाय तो प्रत्येक छन्द और पद का अर्थ इन सब दृष्टियों से लगाया जा सकता है। उदाहरणार्थ, "कहीं लगा अञ्जन एक आँख में, कहीं लगी लाख पड़ी न पैंजनी", कह कर यद्यपि प्रस्थान तत्पर गोपियों की विशेष उत्सुकता ही प्रकट की गई है, तथापि यदि भावुक लोग चाहें तो यहाँ यह कह सकते हैं कि अञ्जन का अर्थ है गुरुपदरज या फिर मायामयी कालिमा, लाख का अर्थ है राग अथवा अनुराग क्योंकि उसका भी रंग लाल माना गया है। और पैंजनी का अर्थ है मुखरता या अहंकार। इस तरह एक आँख का अञ्जन यह सूचित करता है कि दिव्य दृष्टि कुछ कुछ खुल चुकी थी। वह यह भी सूचित कर रहा है कि माया का परदा केवल एकाङ्गी ही रह गया था। पैंजनीविहीन पैरों की लाख यह बताती है कि गोपियाँ कृष्णानुराग से खिंची चली जा रही थीं परन्तु उनकी इस क्रिया में मुखरता अथवा भक्ति की गर्व-गरिमा न थी। दूसरी दृष्टि से वह यह भी

बताती है कि यद्यपि गोपियों में पार्थिव सुखों पर अनुरक्ति बनी हुई थी (क्योंकि लाख युक्त पैर पृथ्वी पर ही थे) परन्तु उनके प्रति अब अहंभावना—प्रबल आसक्ति—नहीं रह गई थी। ये अर्थ भावुकों के हृदय में आप ही आप उद्भूत हो जाते हैं। न इन्हें ढूँढ़ने ही का प्रयास होना चाहिए न इनके लिखने ही का। काव्य के सामान्य अर्थ का अनुभव कराना ही मुझे अभीष्ट जान पड़ा और इसीलिए पुस्तक के अन्त में जो टिप्पणियाँ दी गई हैं उनमें इन विचित्र अर्थों की ओर ध्यान ही नहीं दिया गया है।

इस रचना में आदि से अन्त तक वंशस्थ वृत्त रखा गया है। वंशिका वादन से बँधा हुआ यह विषय भी सुवंशस्थ ही है। भाषा खड़ी बोली है क्योंकि पड़ी बोली में तो इस विषय के कुछ ग्रंथ हैं भी, खड़ी बोली में कोई नहीं। इस खड़ी बोली में भी संस्कृत का पूरा प्राधान्य है क्योंकि एक तो मूल विषय संस्कृत का है दूसरे छंद भी संस्कृत ही का है और तीसरे संस्कृत के उन शब्दों और उन पद समूहों में जितनी भाव व्यंजकता है उतनी अभी तदर्थक ठेठ हिन्दी शब्दों में आ ही नहीं पाई है।

पाठकों की सुविधा के लिए टिप्पणी में क्लिष्ट शब्दों के अर्थ भी दे दिये गये हैं। व्याकरण में अलबत्ता मैंने संस्कृत का अन्धानुसरण नहीं किया है। इसीलिए सम्बोधन कारक में "हरि !" और "हरे !" के प्रयोग तथा विशेष्य विशेषण में "अधीर गोपियाँ" और "अधीरा गोपियाँ" सरीखे अनेक प्रयोग इस रचना में मिलेंगे। कहीं कहीं कवि स्वातन्त्र्य से काम लेकर हिन्दी व्याकरण के भी बन्धन ढीले कर दिए गए हैं। क्योंकि असल उद्देश तो था रस-विस्तार न कि व्याकरण-विस्तार। हिन्दी और संस्कृत के दिग्गज कवियों तक ने जब ऐसी ढिलाई दिखाई है तो फिर मेरे जैसे सामान्य लेखक के लिए तो यह कोई बात ही नहीं है। हाँ, एक विषय अवश्य ऐसा है जो उल्लेख योग्य है। संस्कृत में संयुक्ताक्षर के आदि का ह्रस्व दीर्घ पढ़ा जाता है। कृ, धृ आदि संयुक्त अक्षर नहीं माने जाते क्योंकि ऋ व्यञ्जन न होकर स्वर है। इसलिए उनके पहले का अक्षर दीर्घ न होगा। इस नियम का निर्वाह इस ग्रंथ में बहुत विशेष रूप से हो गया है। संभव है इसीलिये केवल हिन्दी पाठकों को इसके छन्दों का पाठ कहीं कहीं कुछ अटपट सा लगे। वे सज्जन यदि "रस प्रवाह" सरीखे शब्दों को "रसप् प्रवाह" मान कर पढ़ेंगे तो आशा है कि वे इस नियम का अच्छा आनन्द उठावेंगे।

रायगढ़-नरेश श्रीमान् राजा चक्रधर सिंह
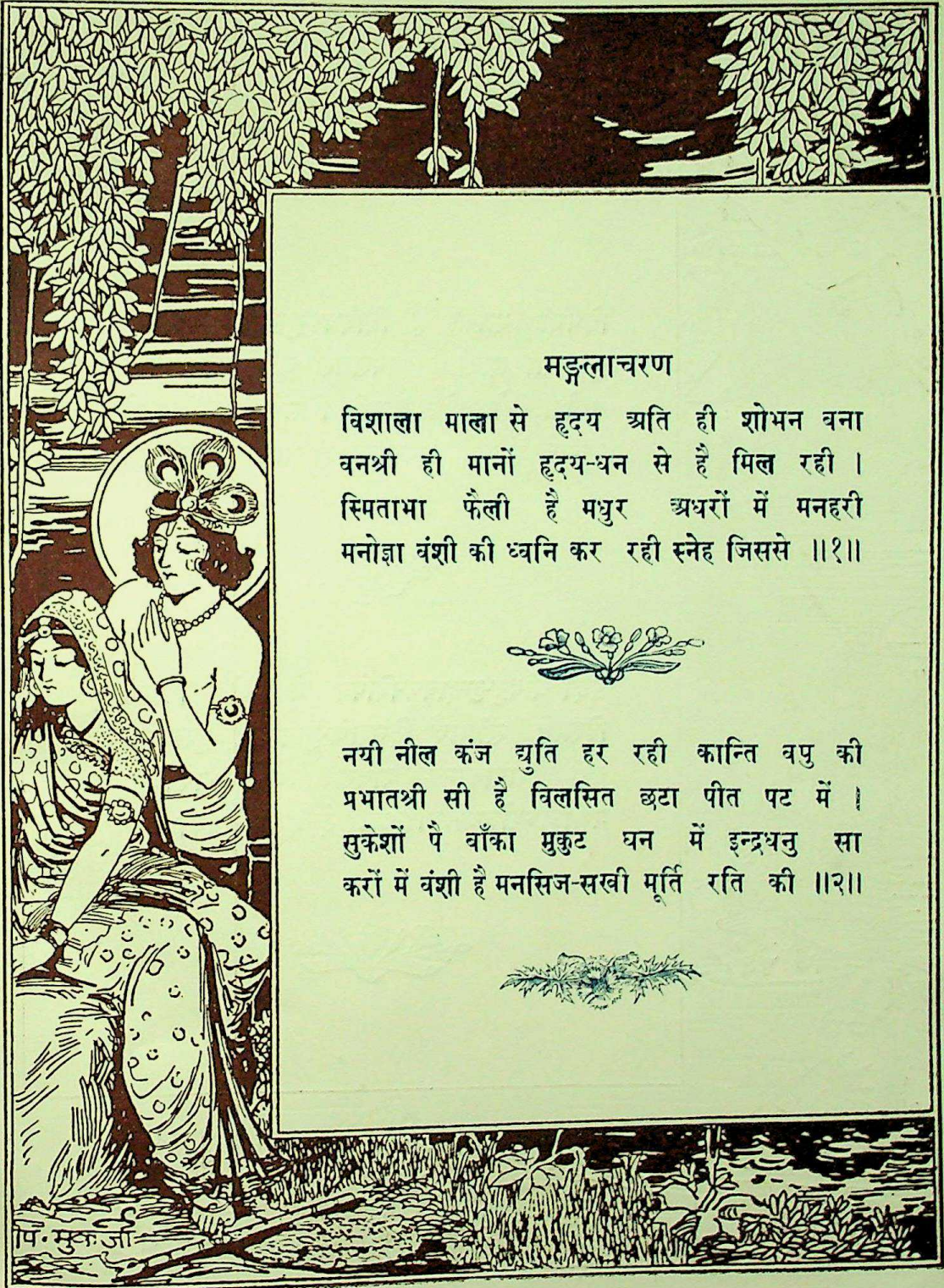
मङ्गलाचरण

विशाला माला से हृदय अति ही शोभन बना
वनश्री ही मानों हृदय-धन से है मिल रही ।
स्मिताभा फैली है मधुर अधरों में मनहरी
मनोज्ञा वंशी की ध्वनि कर रही स्नेह जिससे ॥१॥

नयी नील कंज द्युति हर रही कान्ति वपु की
प्रभातश्री सी है विलसित छटा पीत पट में ।
सुकेशों पै बाँका मुकुट घन में इन्द्रधनु सा
करों में वंशी है मनसिज-सखी मूर्ति रति की ॥२॥
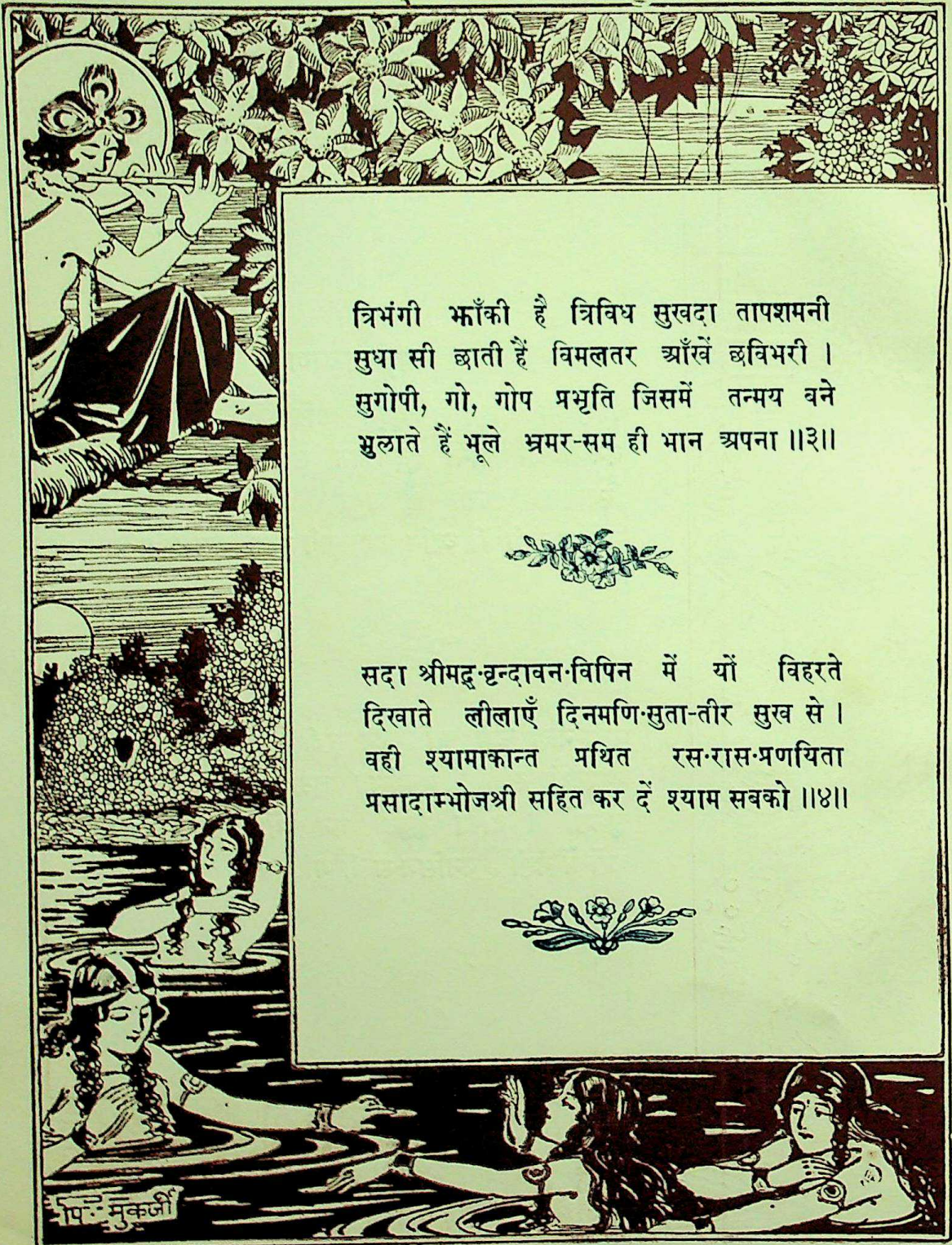
त्रिभंगी झाँकी है त्रिविध सुखदा तापशमनी
सुधा सी छाती हैं विमलतर आँखें छविभरी ।
सुगोपी, गो, गोप प्रभृति जिसमें तन्मय बने
भुलाते हैं भूले भ्रमर-सम ही भान अपना ॥३॥

सदा श्रीमद्-वृन्दावन-विपिन में यों विहरते
दिखाते लीलाएँ दिनमणि-सुता-तीर सुख से ।
वही श्यामाकान्त प्रथित रस-रास-प्रणयिता
प्रसादाम्भोजश्री सहित कर दें श्याम सबको ॥४॥
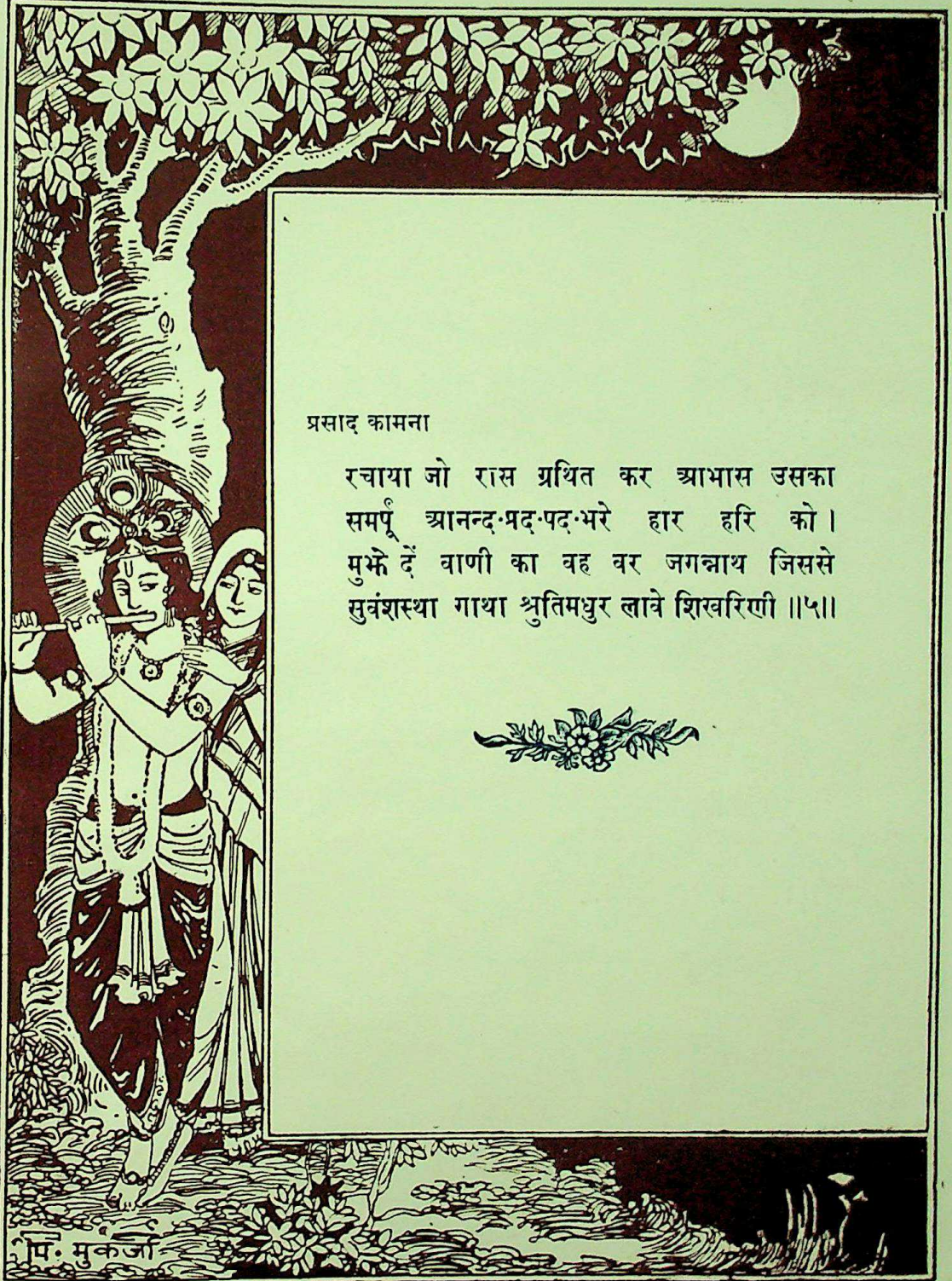
प्रसाद कामना

रचाया जो रास ग्रथित कर आभास उसका
समर्पूं आनन्द-प्रद-पद-भरे हार हरि को।
मुझे दें वाणी का वह वर जगन्नाथ जिससे
सुवंशस्था गाथा श्रुतिमधुर लावे शिखरिणी ॥५॥
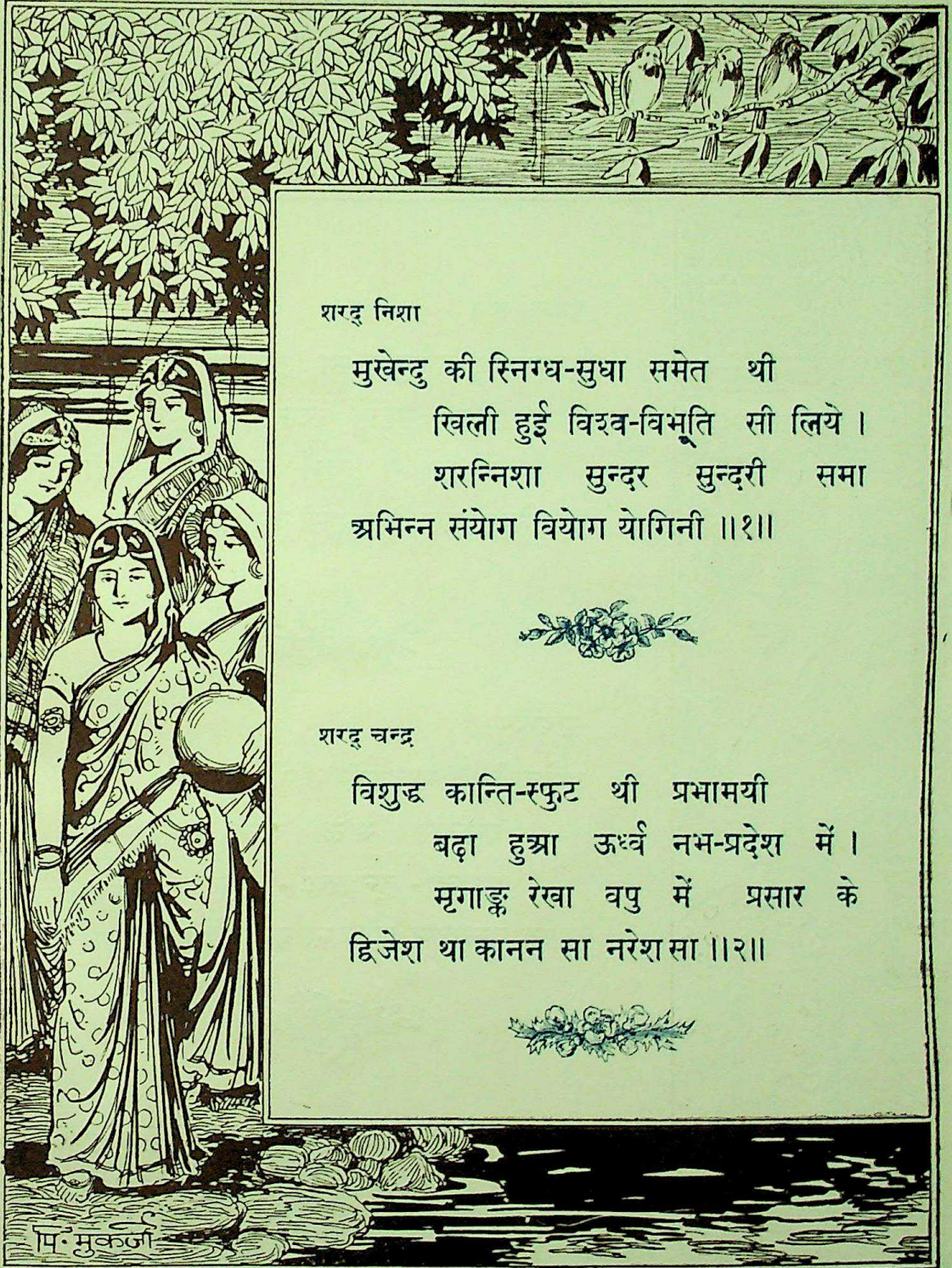
शरद् निशा

मुखेन्दु की स्निग्ध-सुधा समेत थी
खिली हुई विश्व-विभूति सी लिये।
शरन्निशा सुन्दर सुन्दरी समा
अभिन्न संयोग वियोग योगिनी ॥१॥

शरद् चन्द्र

विशुद्ध कान्ति-स्फुट थी प्रभामयी
बढ़ा हुआ ऊर्ध्व नभ-प्रदेश में।
मृगाङ्क रेखा वपु में प्रसार के
द्विजेश था कानन सा नरेश सा ॥२॥
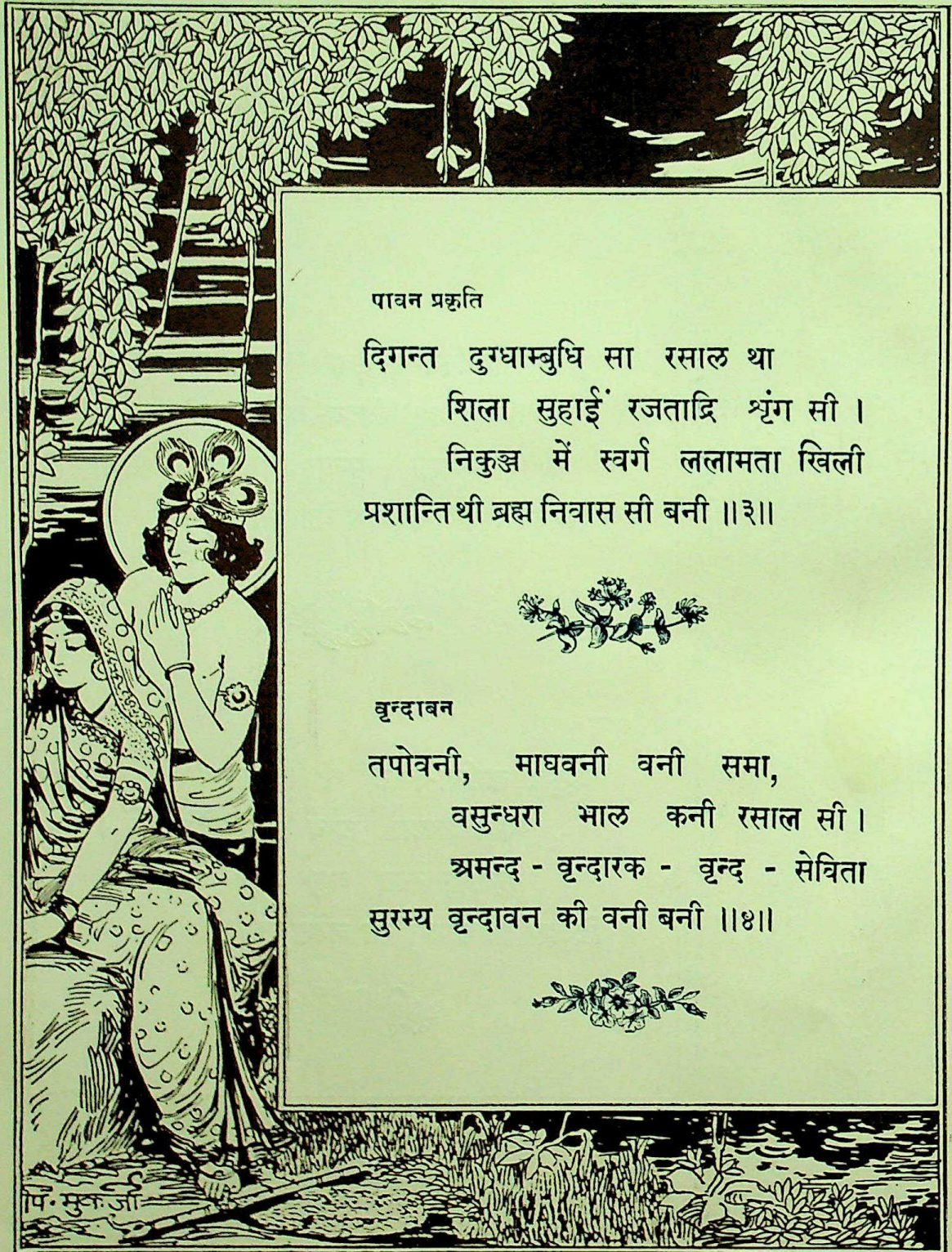
पावन प्रकृति

दिगन्त दुग्धाम्बुधि सा रसाल था
शिला सुहाईं रजताद्रि शृंग सी ।
निकुञ्ज में स्वर्ग ललामता खिली
प्रशान्ति थी ब्रह्म निवास सी बनी ॥३॥

वृन्दाबन

तपोवनी, माधवनी वनी समा,
वसुन्धरा भाल कनी रसाल सी ।
अमन्द - वृन्दारक - वृन्द - सेविता
सुरम्य वृन्दावन की वनी बनी ॥४॥
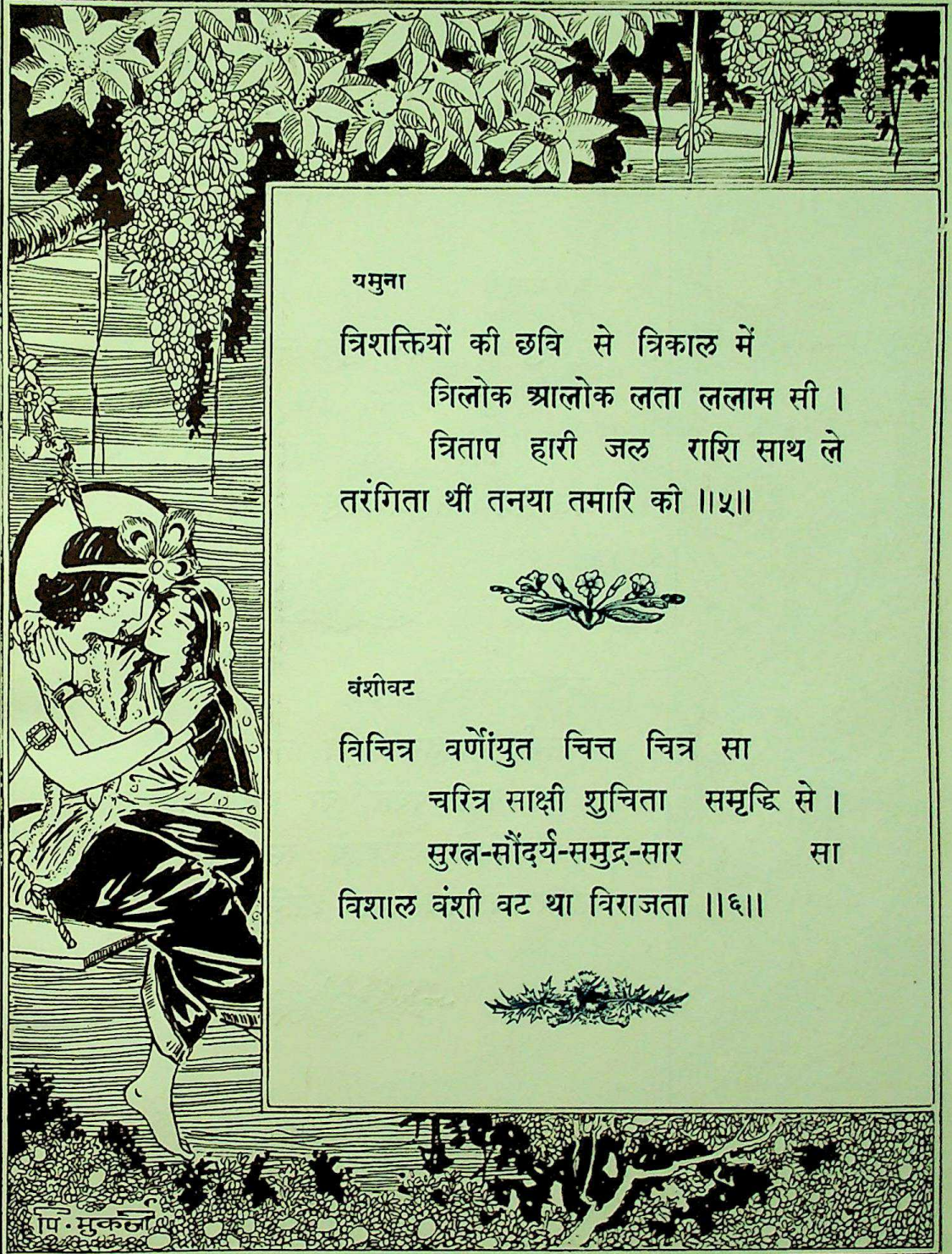
यमुना

त्रिशक्तियों की छवि से त्रिकाल में
त्रिलोक आलोक लता ललाम सी ।
त्रिताप हारी जल राशि साथ ले
तरंगिता थीं तनया तमारि की ॥५॥

वंशीवट

विचित्र वर्णोंयुत चित्त चित्र सा
चरित्र साक्षी शुचिता समृद्धि से ।
सुरत्न-सौंदर्य-समुद्र-सार सा
विशाल वंशी वट था विराजता ॥६॥
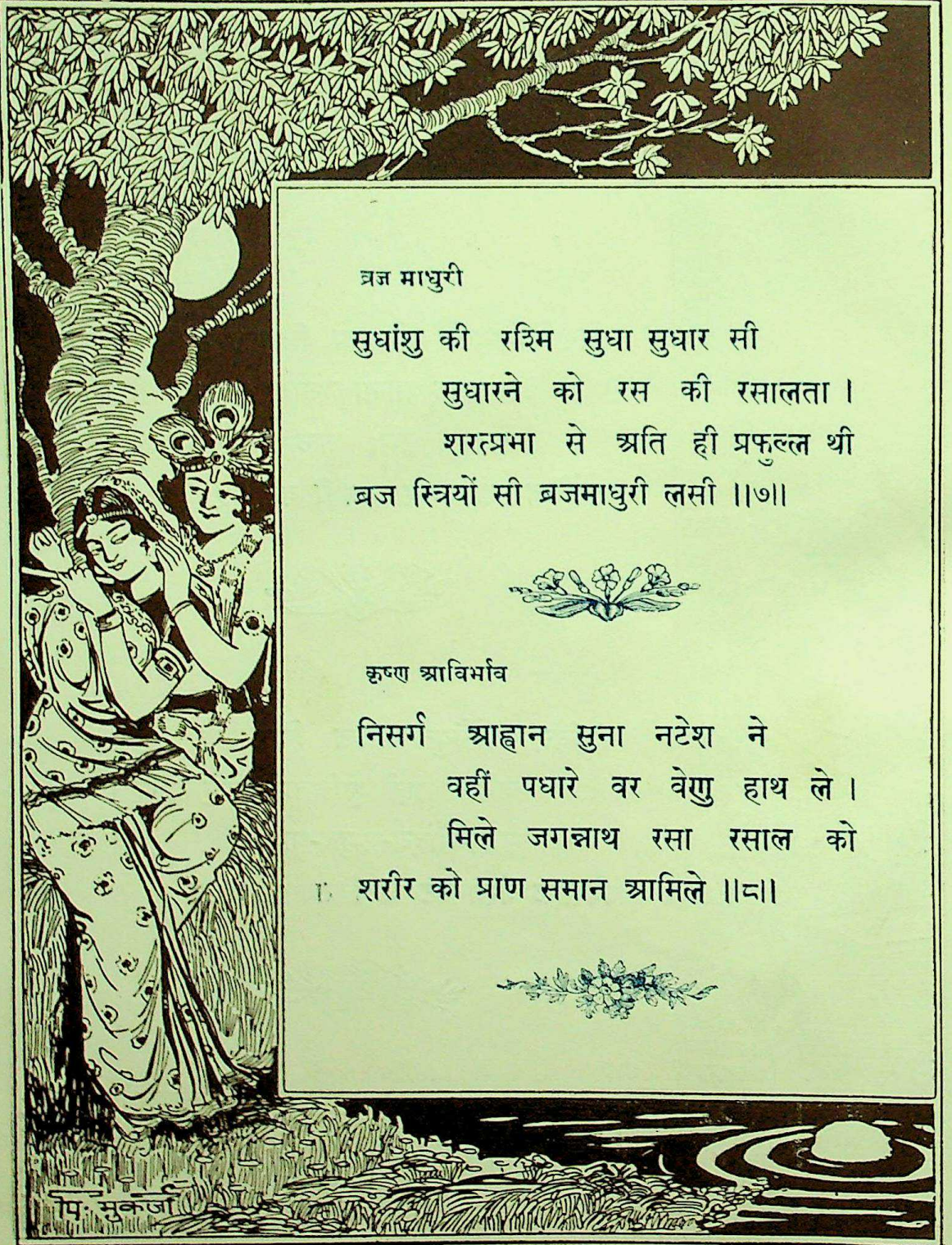
ब्रज माधुरी

सुधांशु की रश्मि सुधा सुधार सी
सुधारने को रस की रसालता ।
शरत्प्रभा से अति ही प्रफुल्ल थी
ब्रज स्त्रियों सी ब्रजमाधुरी लसी ।।७।।

कृष्ण आविर्भाव

निसर्ग आह्वान सुना नटेश ने
वहीं पधारे वर वेणु हाथ ले ।
मिले जगन्नाथ रसा रसाल को
शरीर को प्राण समान आमिले ।।८।।
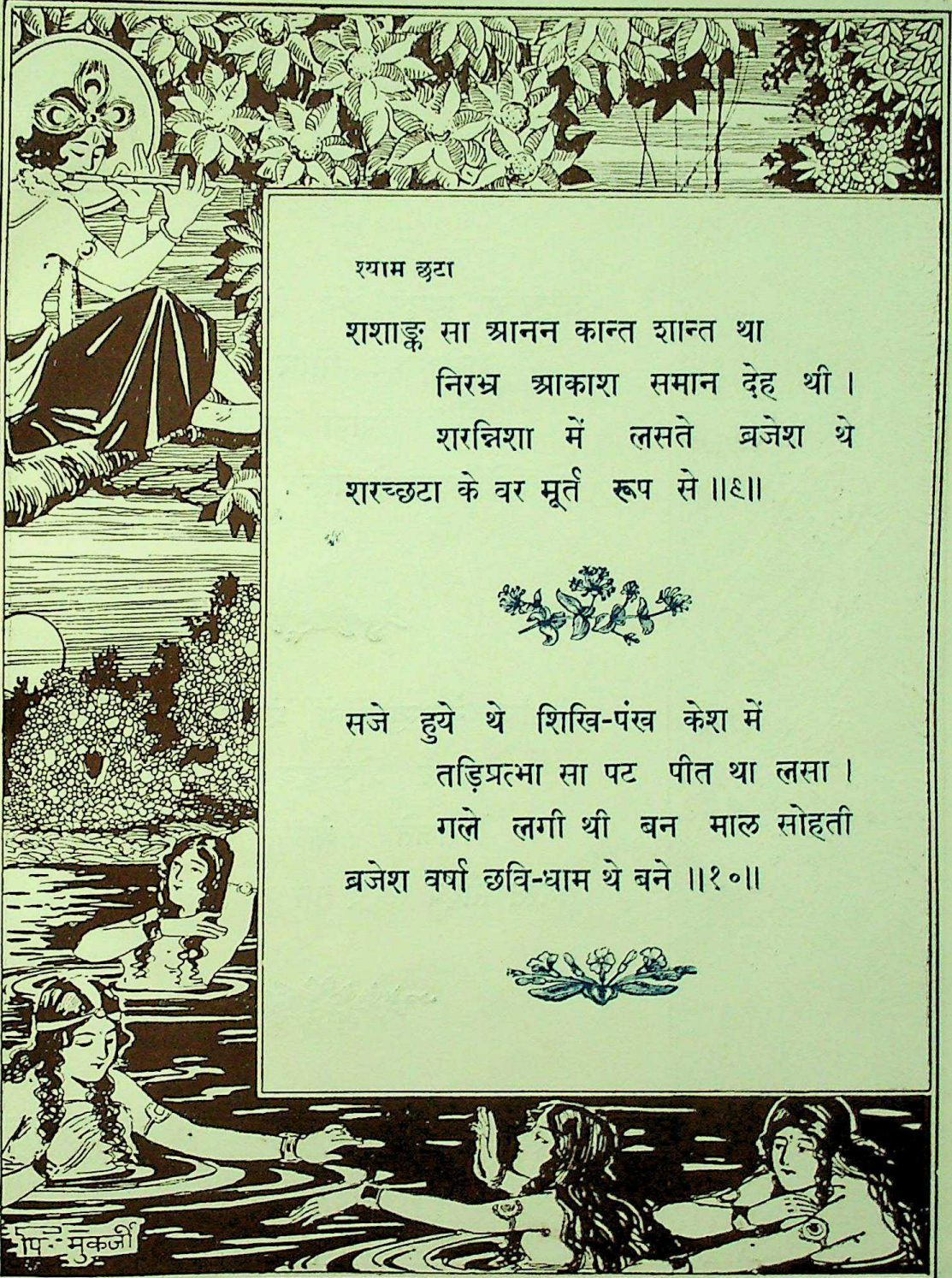
श्याम छटा

शशाङ्क सा आनन कान्त शान्त था
निरभ्र आकाश समान देह थी।
शरन्निशा में लसते ब्रजेश थे
शरच्छटा के वर मूर्त रूप से ॥९॥

सजे हुये थे शिखि-पंख केश में
तड़िप्रभा सा पट पीत था लसा।
गले लगी थी बन माल सोहती
ब्रजेश वर्षा छवि-धाम थे बने ॥१०॥
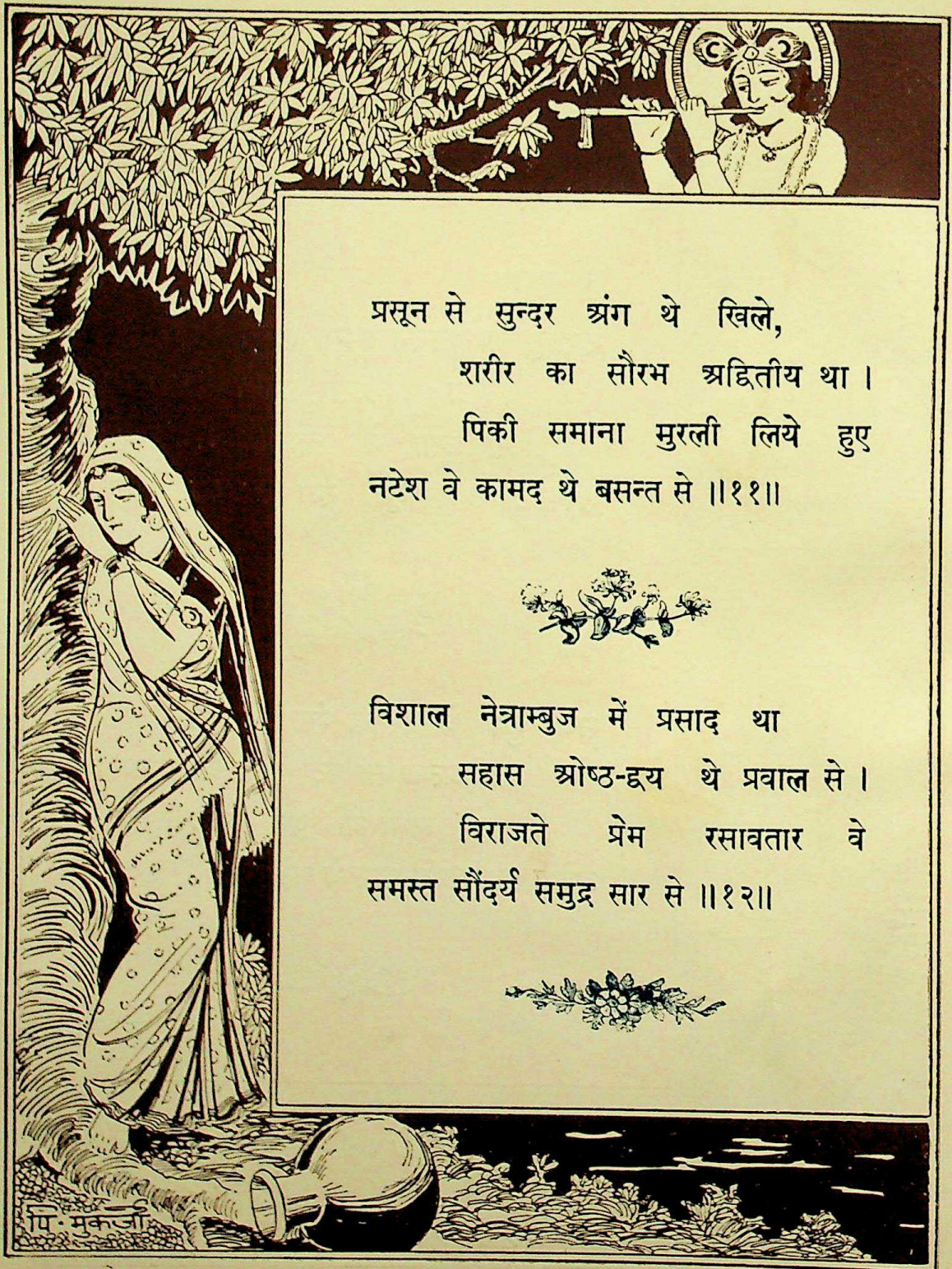
प्रसून से सुन्दर अंग थे खिले,
शरीर का सौरभ अद्वितीय था।
पिकी समाना मुरली लिये हुए
नटेश वे कामद थे बसन्त से ॥११॥

विशाल नेत्राम्बुज में प्रसाद था
सहास ओष्ठ-द्वय थे प्रवाल से।
विराजते प्रेम रसावतार वे
समस्त सौंदर्य समुद्र सार से ॥१२॥
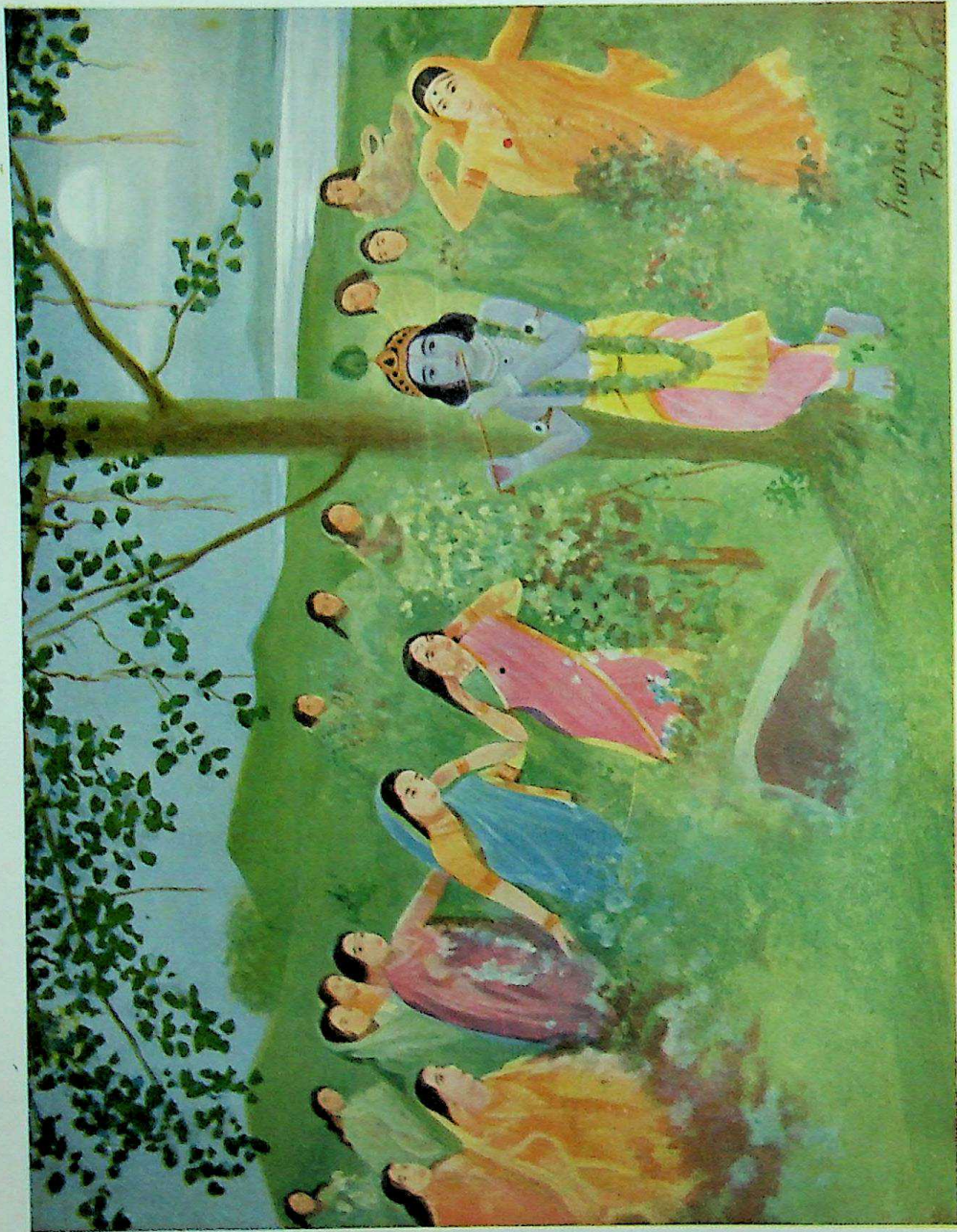
मुरली-वादन
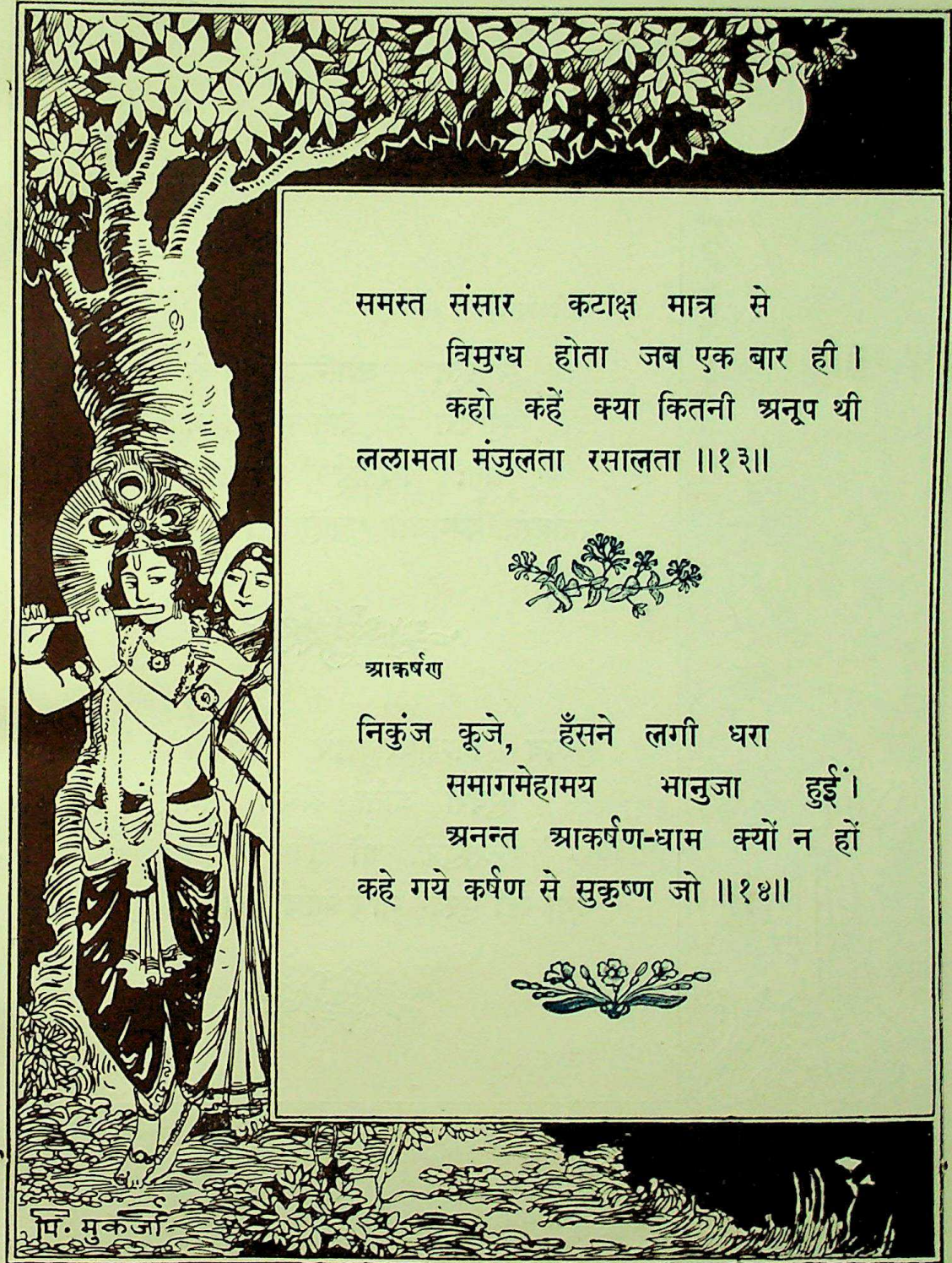
समस्त संसार कटाक्ष मात्र से
विमुग्ध होता जब एक बार ही ।
कहो कहें क्या कितनी अनूप थी
ललामता मंजुलता रसालता ॥१३॥

आकर्षण

निकुंज कूजे, हँसने लगी धरा
समागमेहामय भानुजा हुई ।
अनन्त आकर्षण-धाम क्यों न हों
कहे गये कर्षण से सुकृष्ण जो ॥१४॥
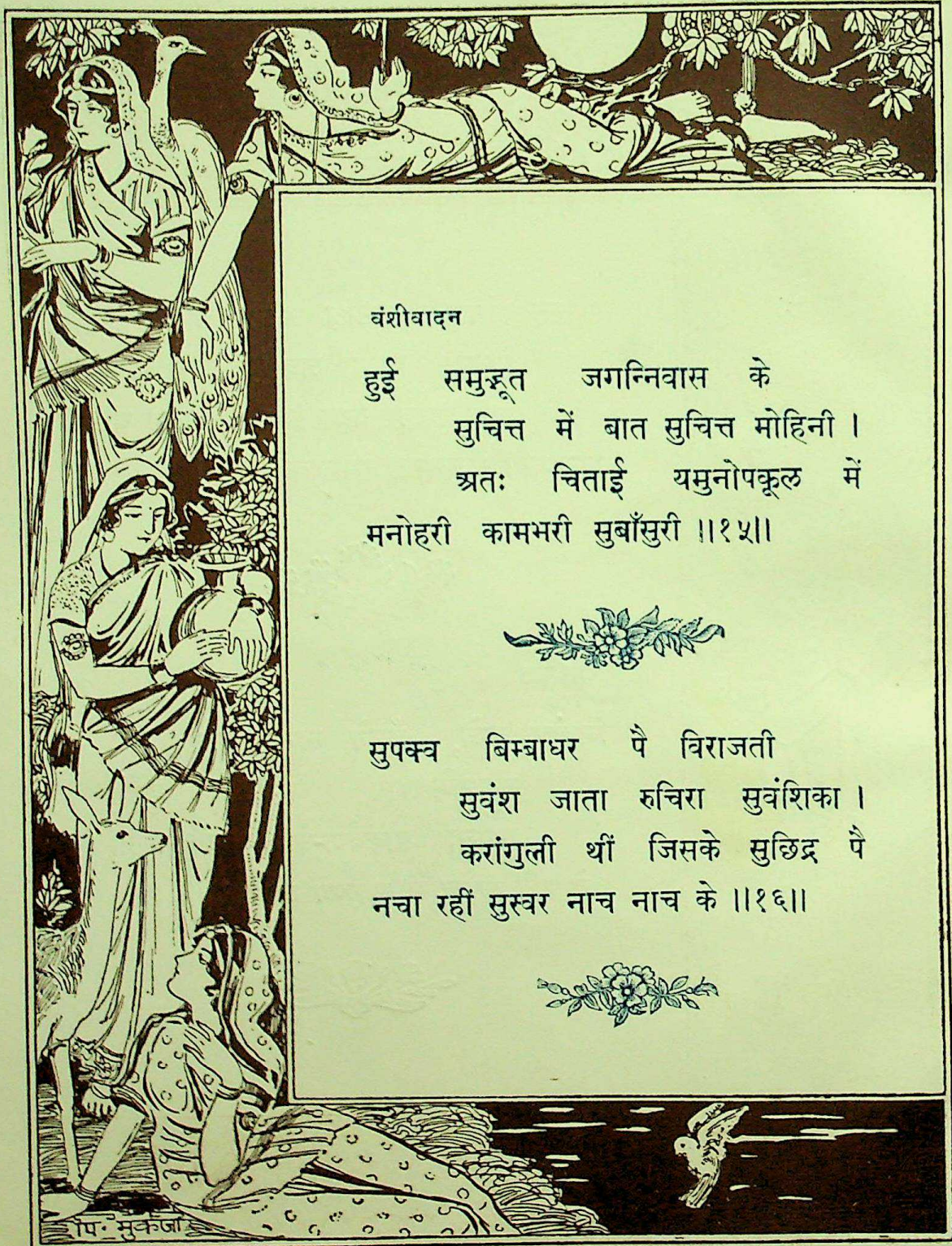
वंशीवादन

हुई समुद्भूत जगन्निवास के
सुचित्त में बात सुचित्त मोहिनी ।
अतः चिताई यमुनोपकूल में
मनोहरी कामभरी सुबाँसुरी ॥१५॥

सुपक्व बिम्बाधर पै विराजती
सुवंश जाता रुचिरा सुवंशिका ।
करांगुली थीं जिसके सुछिद्र पै
नचा रहीं सुस्वर नाच नाच के ॥१६॥
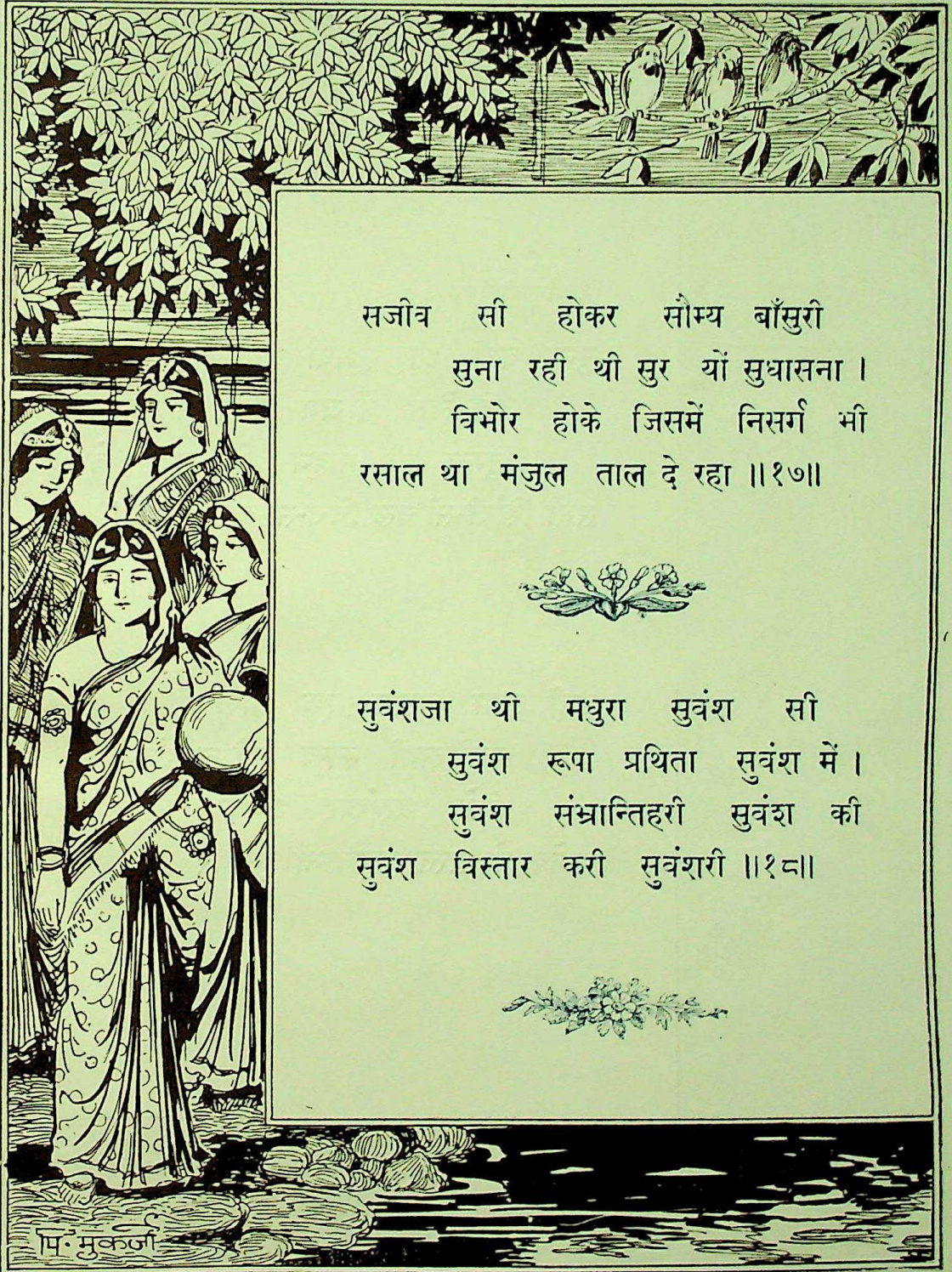
सजीव सी होकर सौम्य बाँसुरी
सुना रही थी सुर यों सुधासना।
विभोर होके जिसमें निसर्ग भी
रसाल था मंजुल ताल दे रहा ॥१७॥

सुवंशजा थी मधुरा सुवंश सी
सुवंश रूपा प्रथिता सुवंश में।
सुवंश संभ्रान्तिहरी सुवंश की
सुवंश विस्तार करी सुवंशरी ॥१८॥
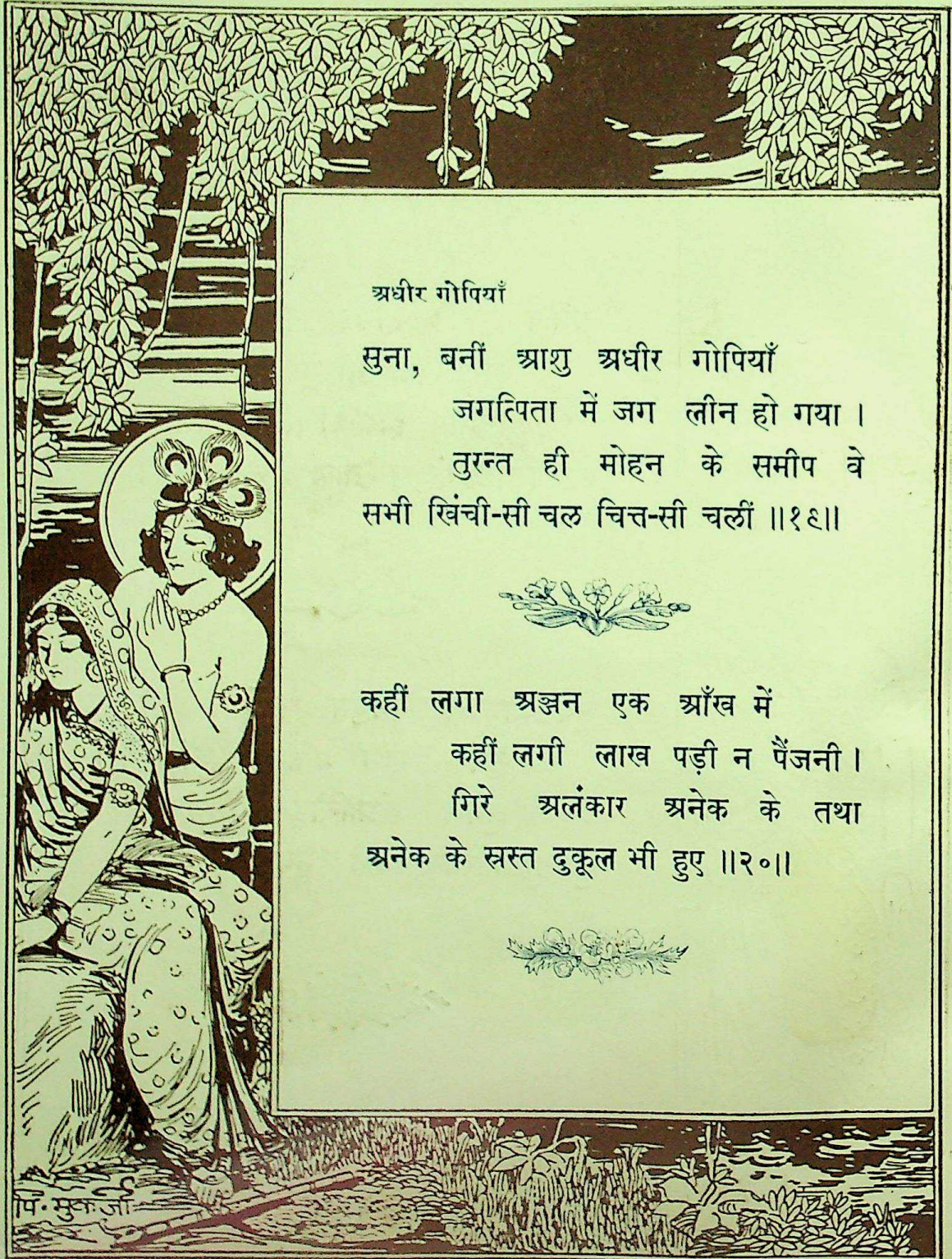
अधीर गोपियाँ

सुना, बनीं आशु अधीर गोपियाँ
जगतपिता में जग लीन हो गया।
तुरन्त ही मोहन के समीप वे
सभी खिंची-सी चल चित्त-सी चलीं ॥१९॥
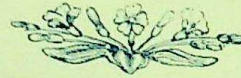
कहीं लगा अञ्जन एक आँख में
कहीं लगी लाख पड़ी न पैंजनी।
गिरे अलंकार अनेक के तथा
अनेक के स्रस्त दुकूल भी हुए ॥२०॥
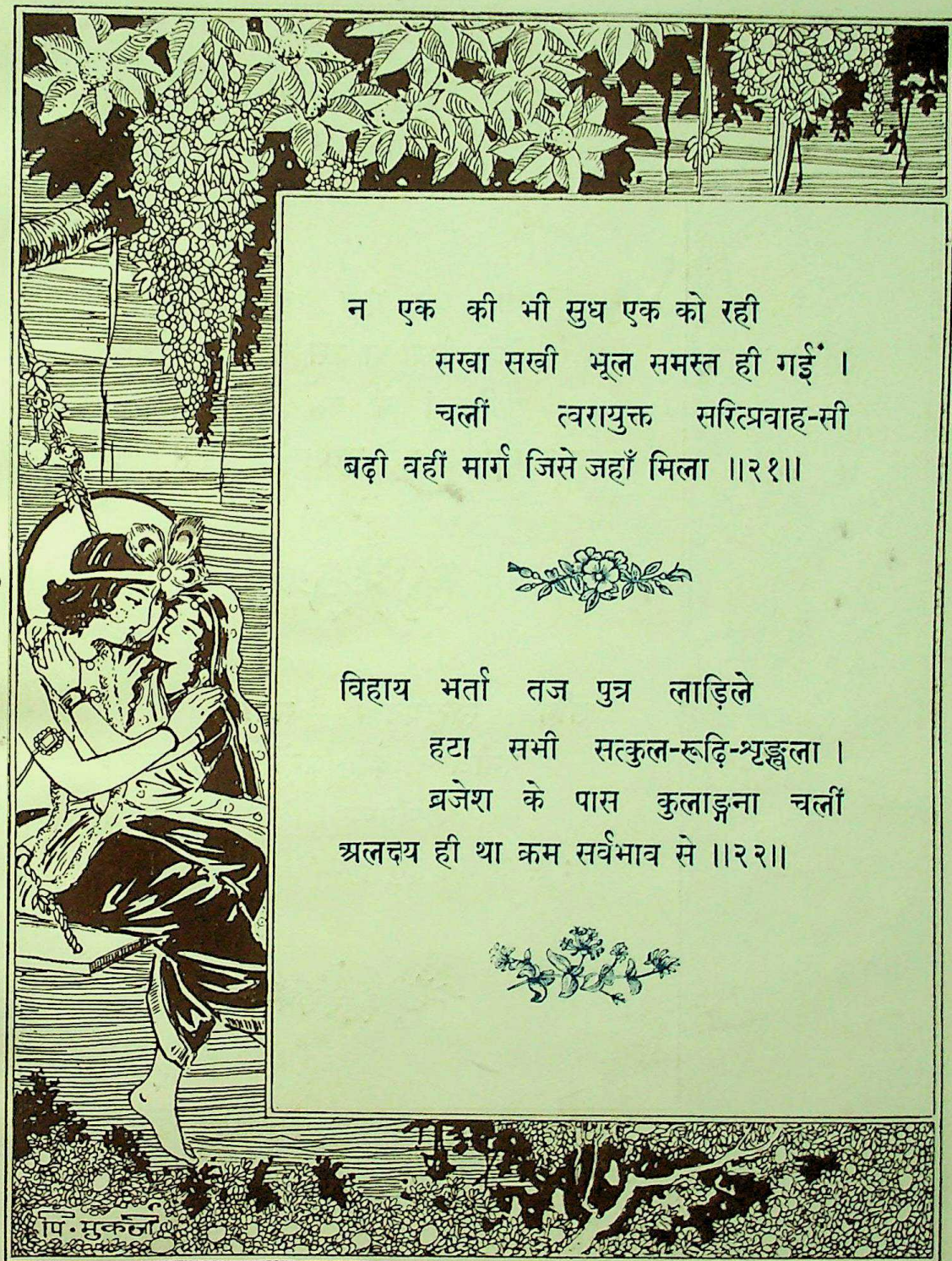
न एक की भी सुध एक को रही
सखा सखी भूल समस्त ही गईं ।
चलीं त्वरायुक्त सरित्प्रवाह-सी
बढ़ी वहीं मार्ग जिसे जहाँ मिला ॥२१॥

विहाय भर्ता तज पुत्र लाड़िले
हटा सभी सत्कुल-रूढ़ि-शृङ्खला ।
व्रजेश के पास कुलाङ्गना चलीं
अलक्ष्य ही था क्रम सर्वभाव से ॥२२॥
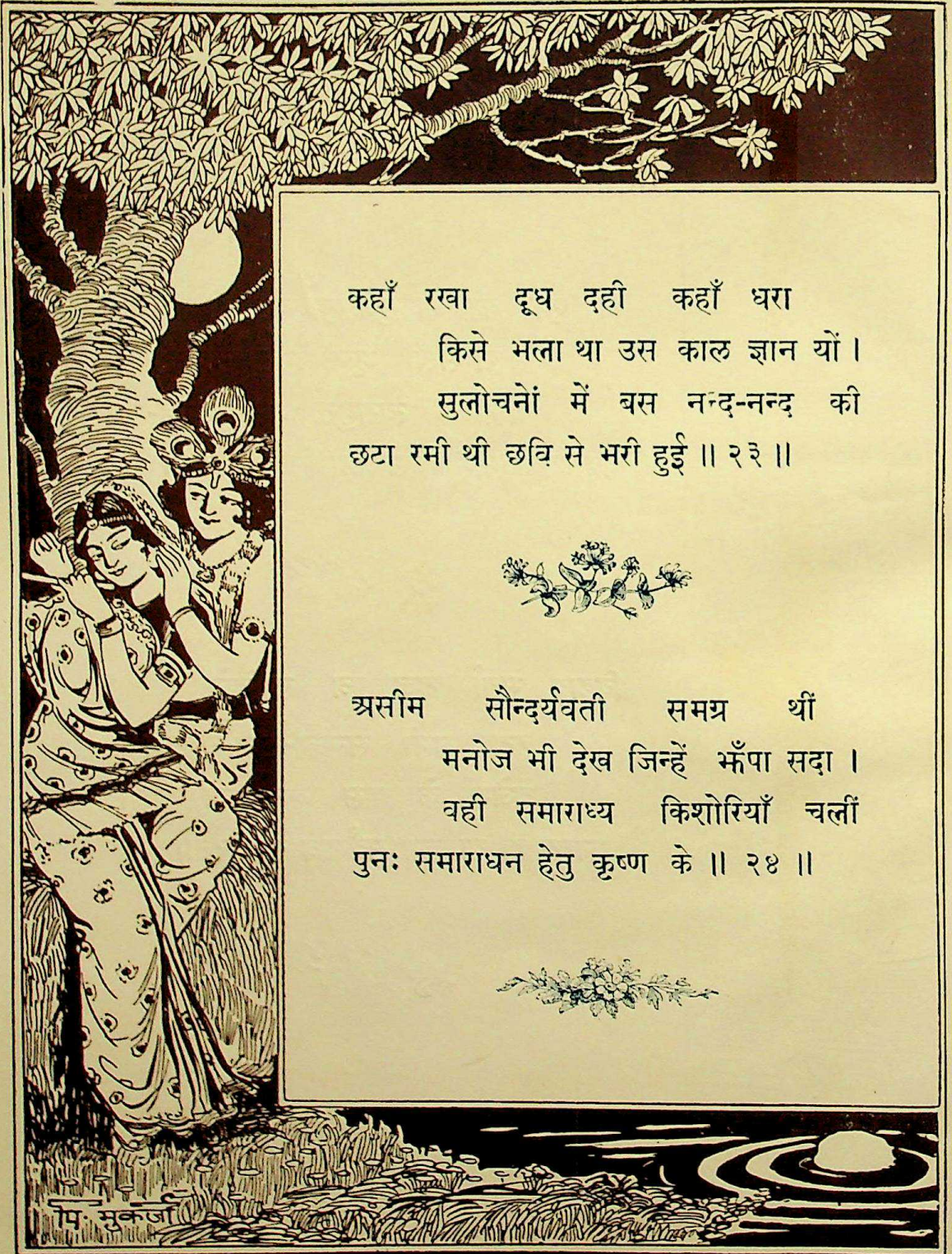
कहाँ रखा दूध दही कहाँ धरा
किसे भला था उस काल ज्ञान यों ।
सुलोचनों में बस नन्द-नन्द की
छटा रमी थी छवि से भरी हुई ॥ २३ ॥

असीम सौन्दर्यवती समग्र थीं
मनोज भी देख जिन्हें झँपा सदा ।
वही समाराध्य किशोरियाँ चलीं
पुनः समाराधन हेतु कृष्ण के ॥ २४ ॥

कृष्णान्वेषण
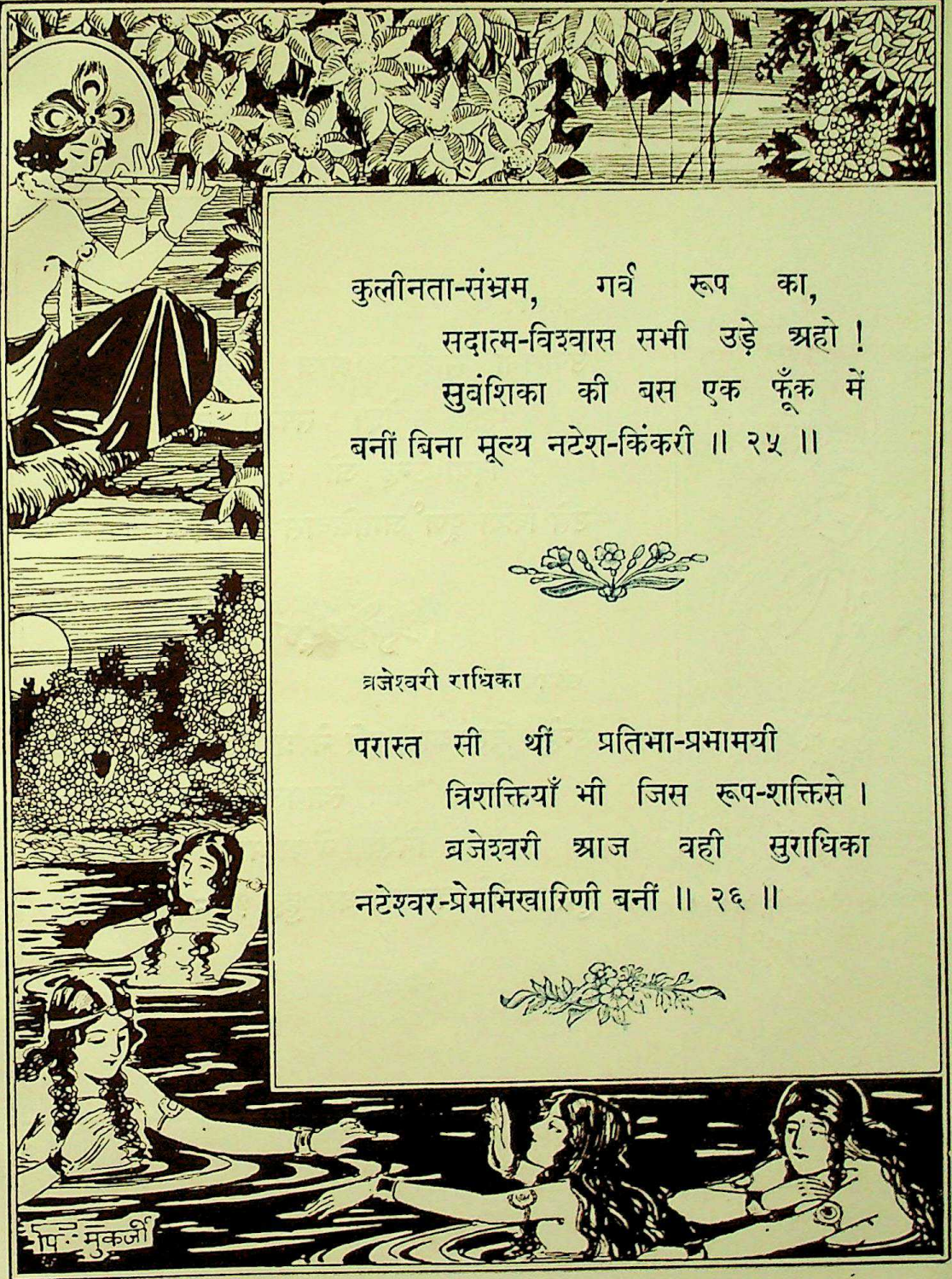
कुलीनता-संभ्रम, गर्व रूप का,
सदात्म-विश्वास सभी उड़े अहो !
सुवंशिका की बस एक फूँक में
बनीं बिना मूल्य नटेश-किंकरी ॥ २५ ॥

ब्रजेश्वरी राधिका

परास्त सी थीं प्रतिभा-प्रभामयी
त्रिशक्तियाँ भी जिस रूप-शक्तिसे ।
ब्रजेश्वरी आज वही सुराधिका
नटेश्वर-प्रेमभिखारिणी बनीं ॥ २६ ॥
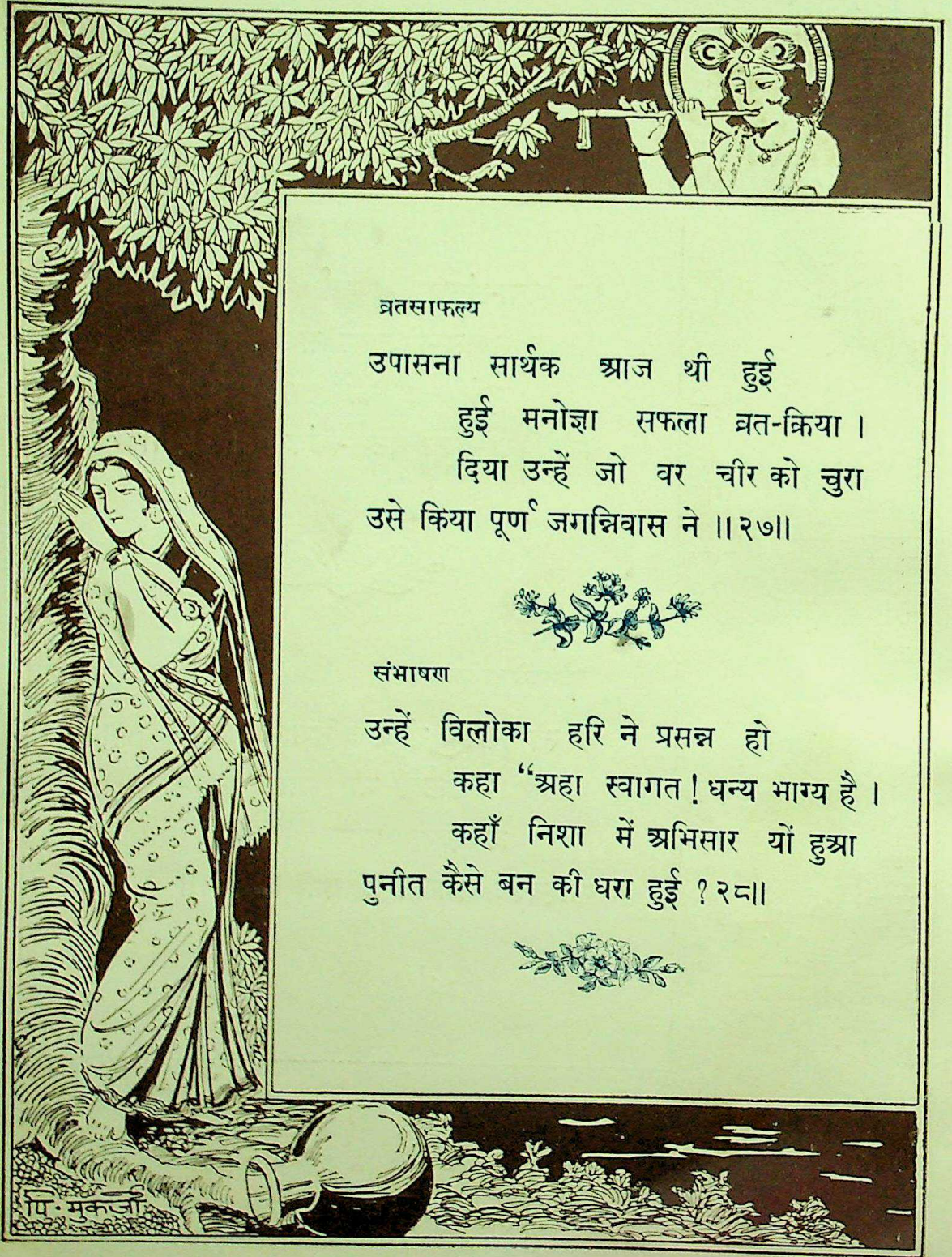
व्रतसाफल्य

उपासना सार्थक आज थी हुई
हुई मनोज्ञा सफला व्रत-क्रिया ।
दिया उन्हें जो वर चीर को चुरा
उसे किया पूर्ण जगन्निवास ने ॥२७॥

संभाषण

उन्हें विलोका हरि ने प्रसन्न हो
कहा "अहा स्वागत! धन्य भाग्य है ।
कहाँ निशा में अभिसार यों हुआ
पुनीत कैसे बन की धरा हुई ?२८॥
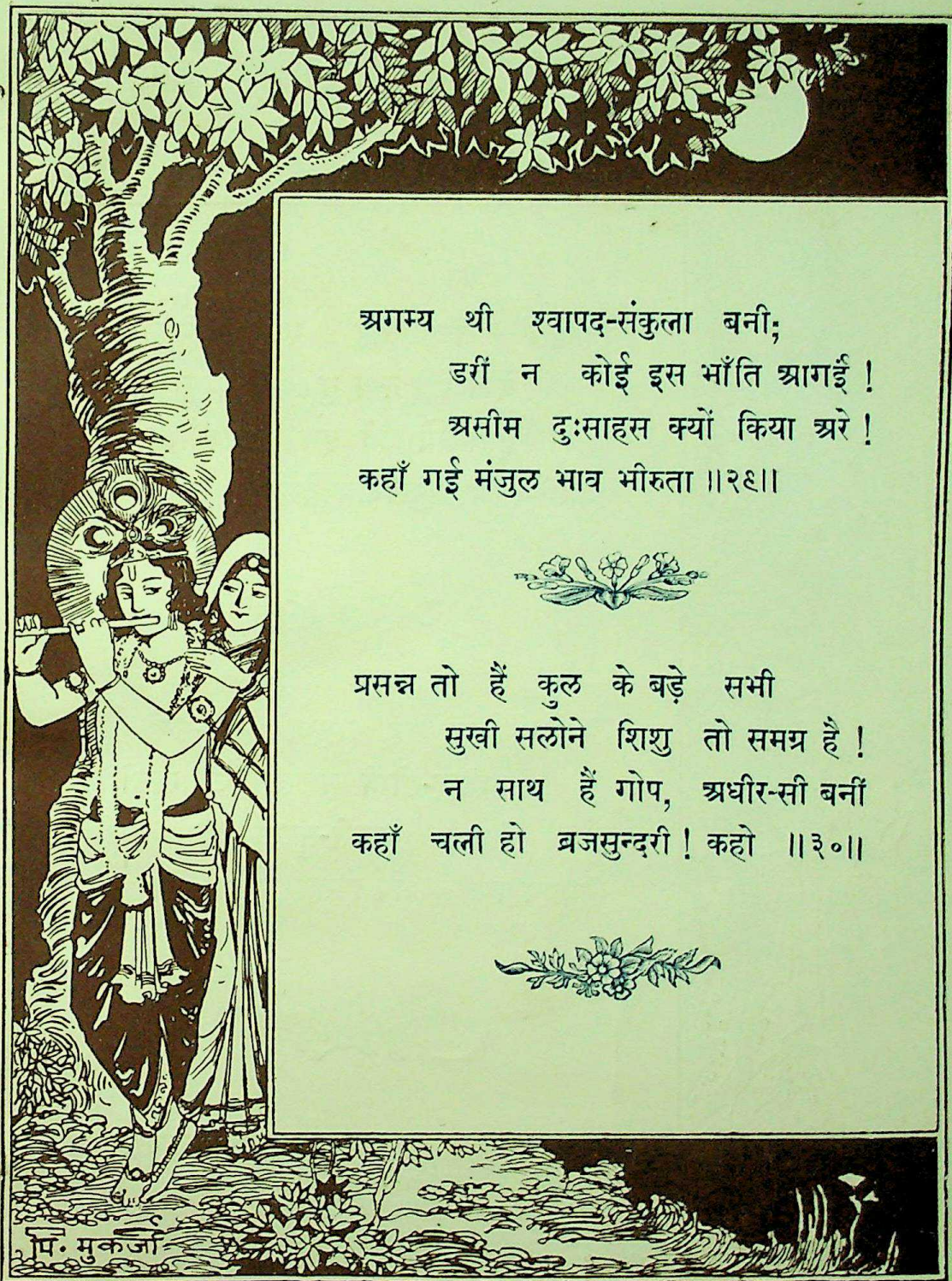
अगम्य थी श्वापद-संकुला बनी;
डरीं न कोई इस भाँति आगई !
असीम दुःसाहस क्यों किया अरे !
कहाँ गई मंजुल भाव भीरुता ॥२९॥

प्रसन्न तो हैं कुल के बड़े सभी
सुखी सलोने शिशु तो समग्र है !
न साथ हैं गोप, अधीर-सी बनीं
कहाँ चली हो व्रजसुन्दरी ! कहो ॥३०॥

विलास वाली यह शारदी निशा
बना रही क्या तुमको विमुग्धसा !
इसीलिये हो इस ओर आगईं
निसर्ग-शोभा सुखधाम देखने ? ३१ ॥

विलोक ली है वसुधा सुधा-सनी
शशाङ्क-शोभी नभकी छटा लखी ।
खिली बनश्री-सुषमा समेट लो
विलम्ब क्यों है अब होरहा यहाँ ?३२॥
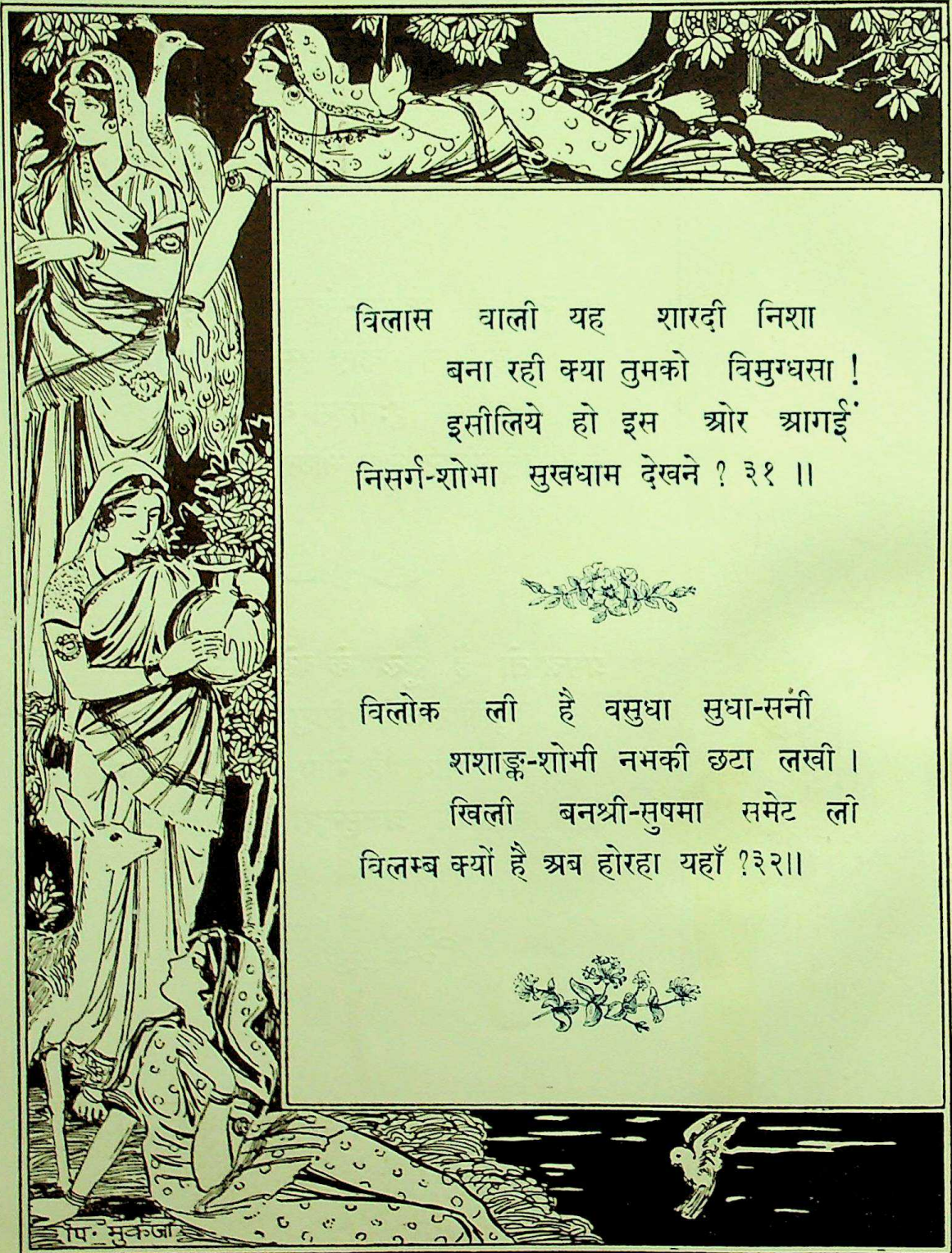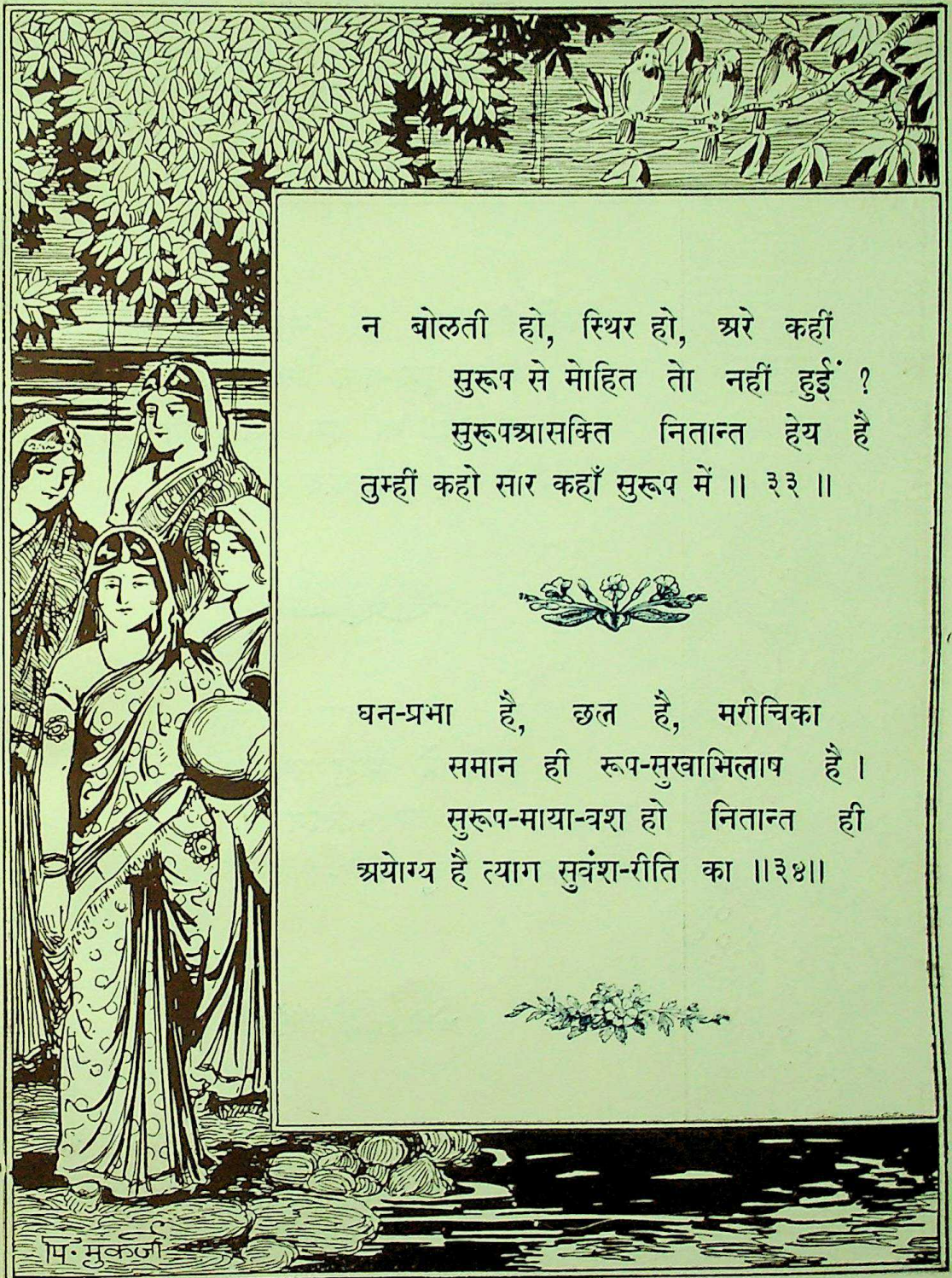
न बोलती हो, स्थिर हो, अरे कहीं
सुरूप से मोहित तो नहीं हुईं ?
सुरूपआसक्ति नितान्त हेय है
तुम्हीं कहो सार कहाँ सुरूप में ॥ ३३ ॥

घन-प्रभा है, छल है, मरीचिका
समान ही रूप-सुखाभिलाष है।
सुरूप-माया-वश हो नितान्त ही
अयोग्य है त्याग सुवंश-रीति का ॥३४॥
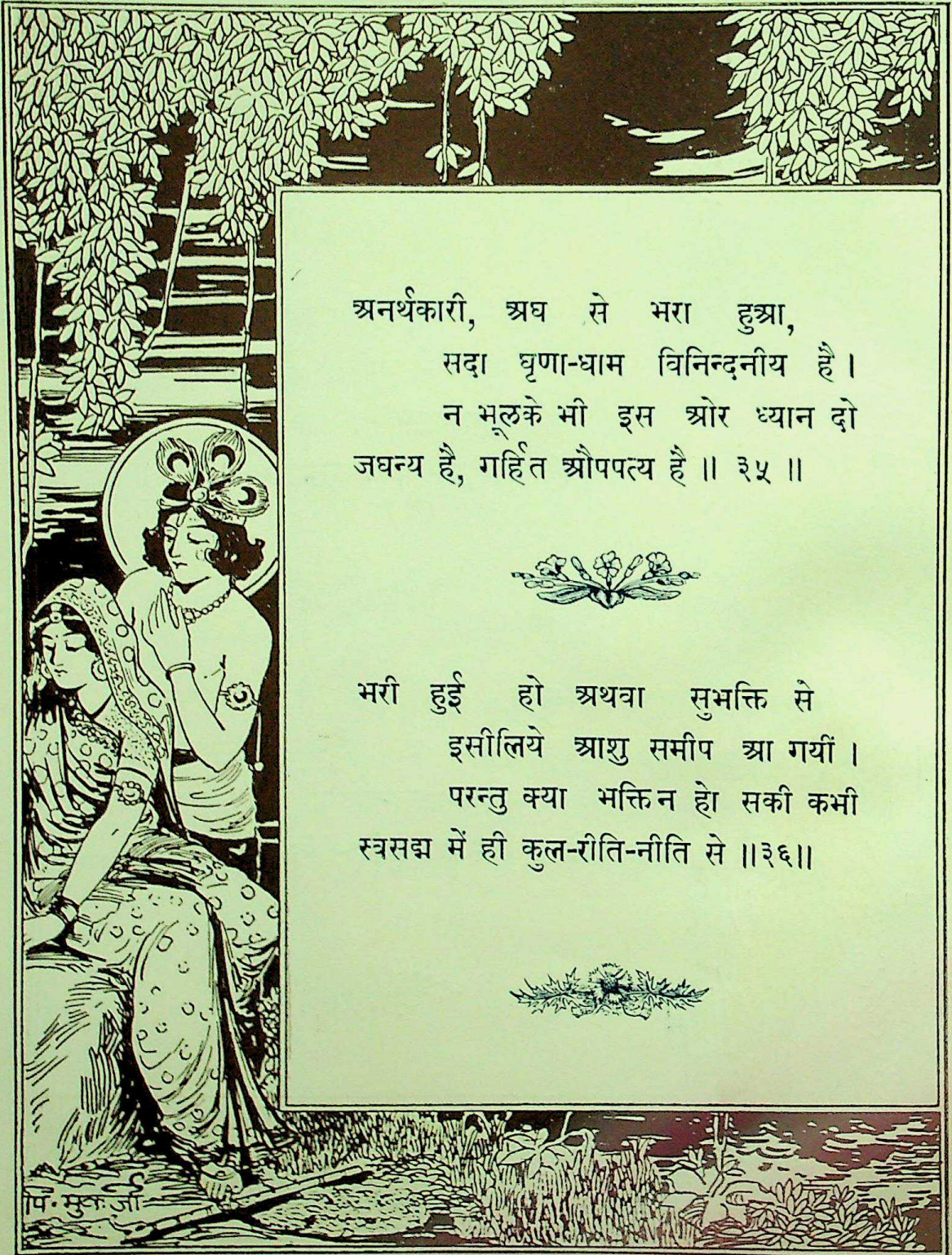
अनर्थकारी, अघ से भरा हुआ,
सदा घृणा-धाम विनिन्दनीय है।
न भूलके भी इस ओर ध्यान दो
जघन्य है, गर्हित औपपत्य है ॥ ३५ ॥

भरी हुई हो अथवा सुभक्ति से
इसीलिये आशु समीप आ गयीं।
परन्तु क्या भक्ति न हो सकी कभी
स्वसद्म में ही कुल-रीति-नीति से ॥३६॥
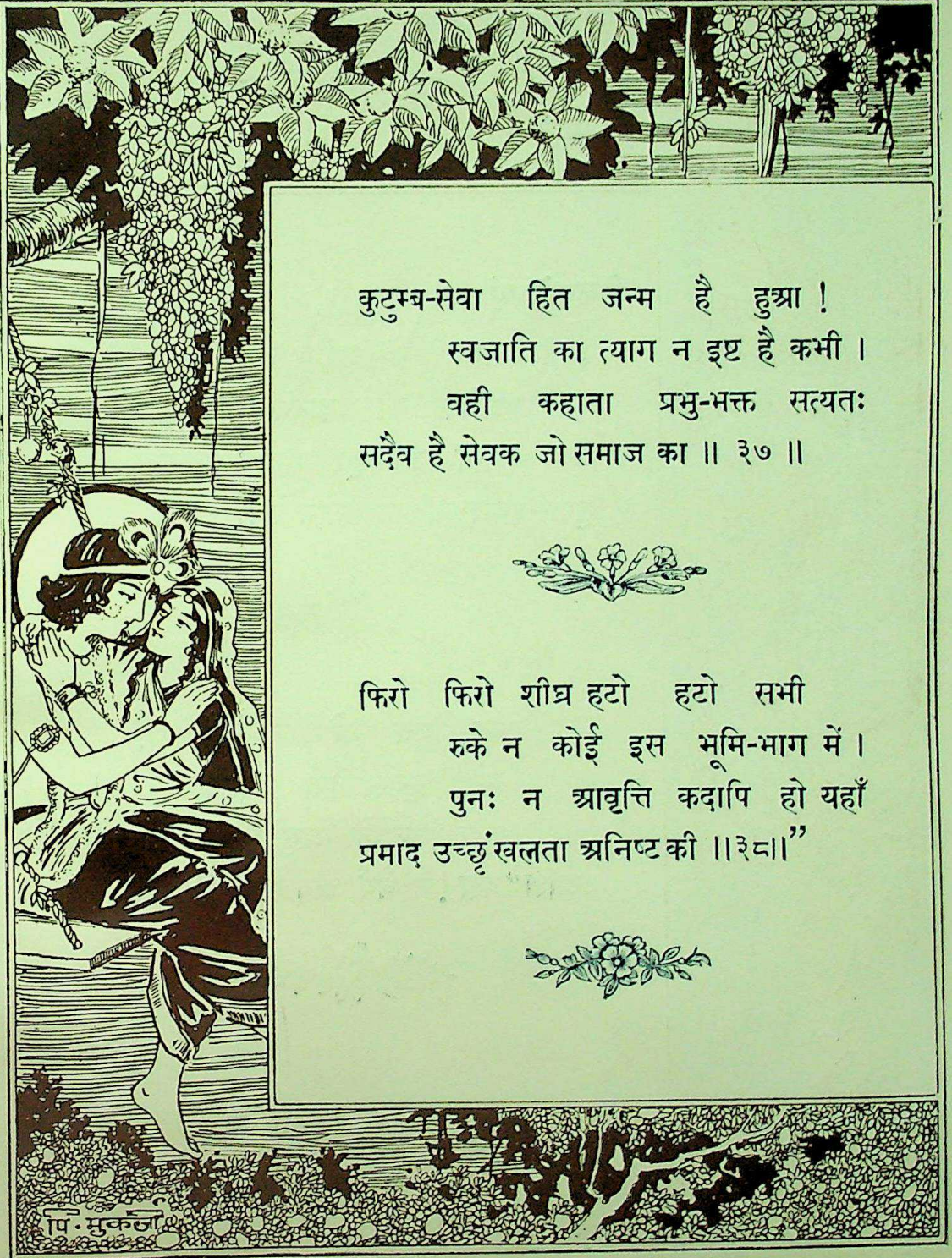
कुटुम्ब-सेवा हित जन्म है हुआ !
स्वजाति का त्याग न इष्ट है कभी ।
वही कहाता प्रभु-भक्त सत्यतः
सदैव है सेवक जो समाज का ॥ ३७ ॥

फिरो फिरो शीघ्र हटो हटो सभी
रुके न कोई इस भूमि-भाग में ।
पुनः न आवृत्ति कदापि हो यहाँ
प्रमाद उच्छृंखलता अनिष्ट की ॥३८॥"
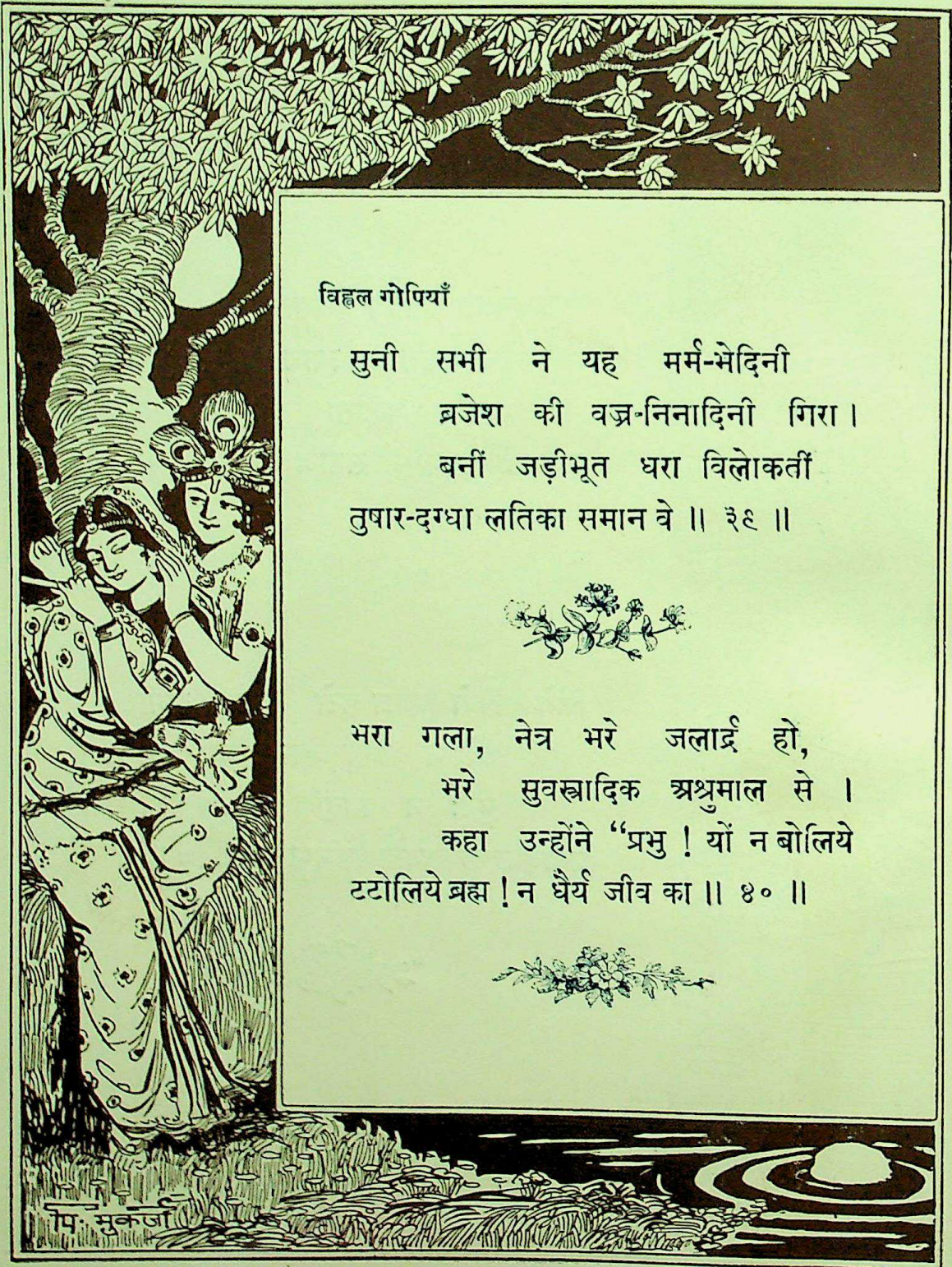
विह्वल गोपियाँ

सुनी सभी ने यह मर्म-भेदिनी
ब्रजेश की वज्र-निनादिनी गिरा।
बनीं जड़ीभूत धरा विलोकतीं
तुषार-दग्धा लतिका समान वे ॥ ३९ ॥
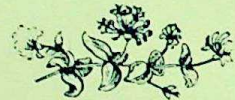
भरा गला, नेत्र भरे जलार्द्र हो,
भरे सुवस्त्रादिक अश्रुमाल से ।
कहा उन्होंने "प्रभु ! यों न बोलिये
टटोलिये ब्रह्म ! न धैर्य जीव का ॥ ४० ॥
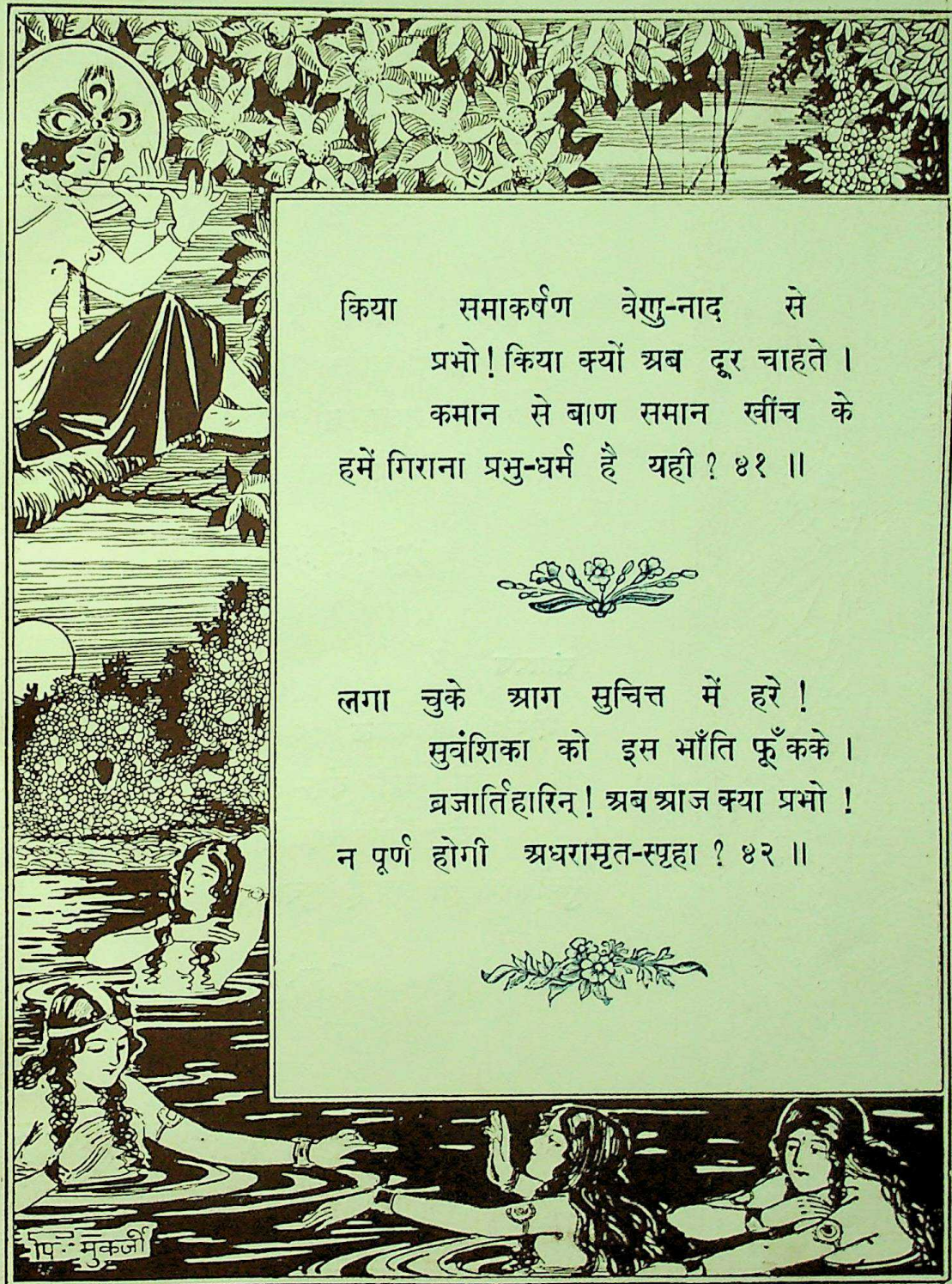
किया समाकर्षण वेणु-नाद से
प्रभो! किया क्यों अब दूर चाहते।
कमान से बाण समान खींच के
हमें गिराना प्रभु-धर्म है यही? ४१ ॥

लगा चुके आग सुचित्त में हरे!
सुवंशिका को इस भाँति फूँकके।
व्रजार्तिहारिन्! अब आज क्या प्रभो!
न पूर्ण होगी अधरामृत-स्पृहा? ४२ ॥
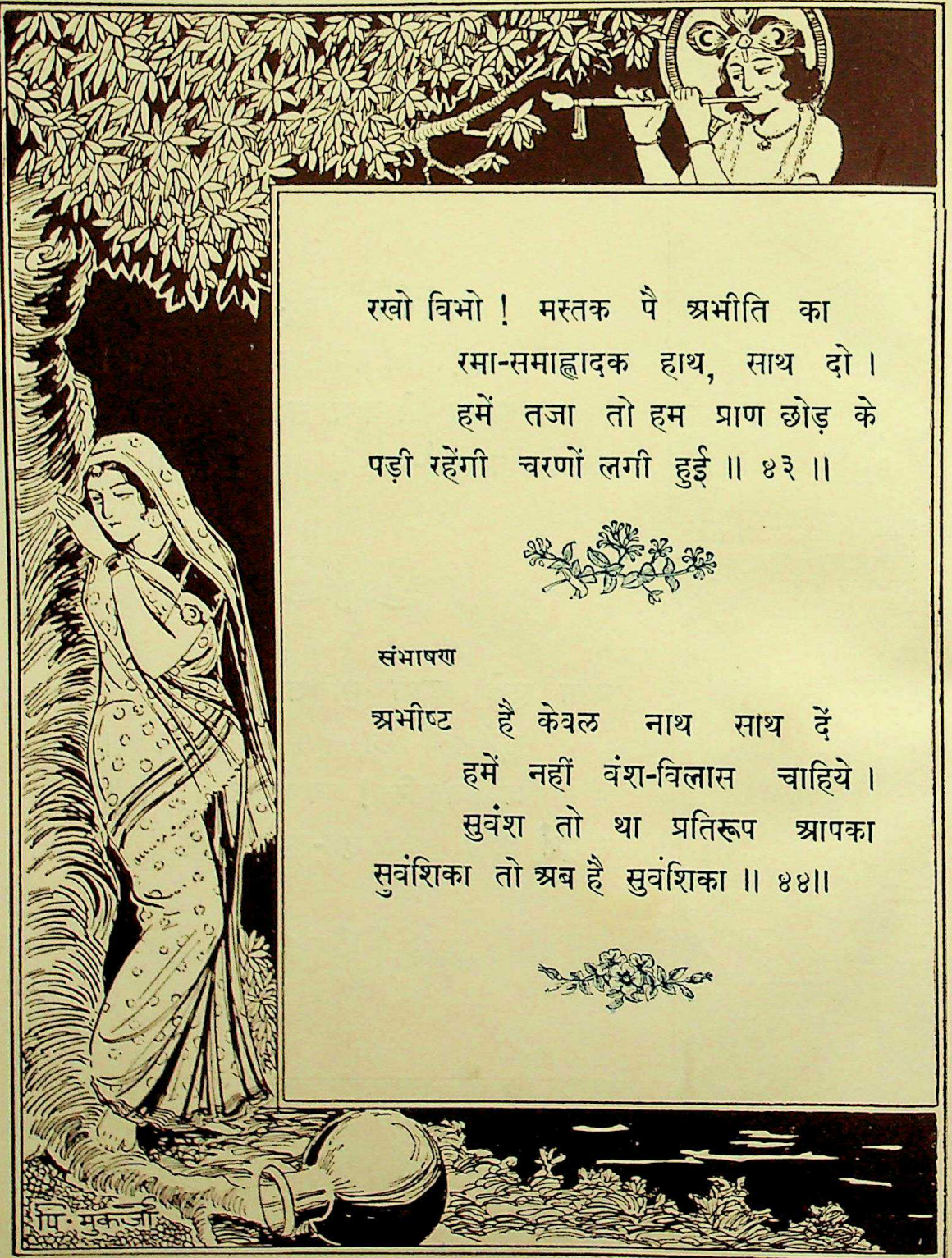
रखो विभो ! मस्तक पै अभीति का
रमा-समाह्लादक हाथ, साथ दो।
हमें तजा तो हम प्राण छोड़ के
पड़ी रहेंगी चरणों लगी हुई ॥ ४३ ॥

संभाषण

अभीष्ट है केवल नाथ साथ दें
हमें नहीं वंश-विलास चाहिये।
सुवंश तो था प्रतिरूप आपका
सुवंशिका तो अब है सुवंशिका ॥ ४४॥
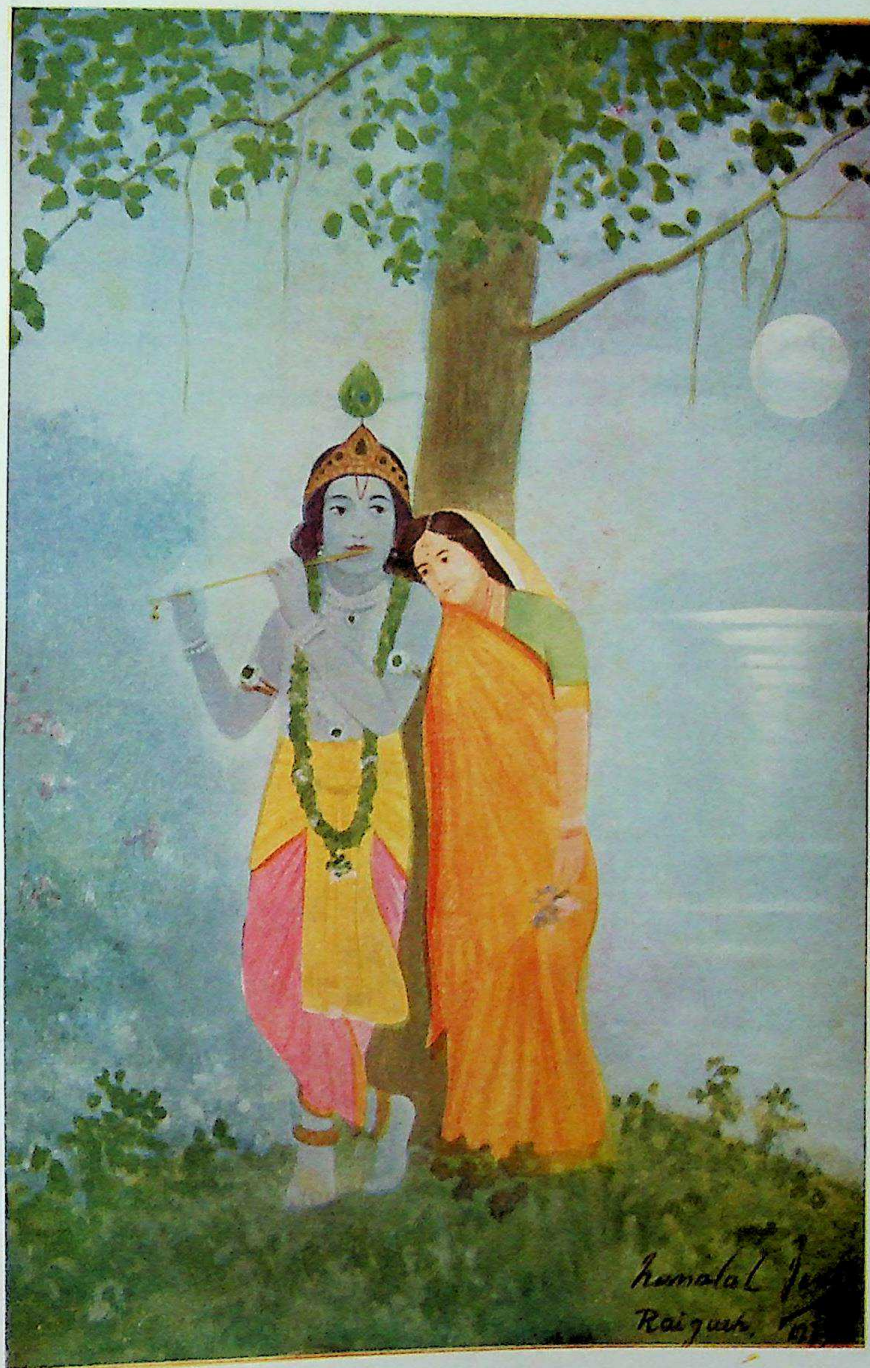
युगल झाँकी
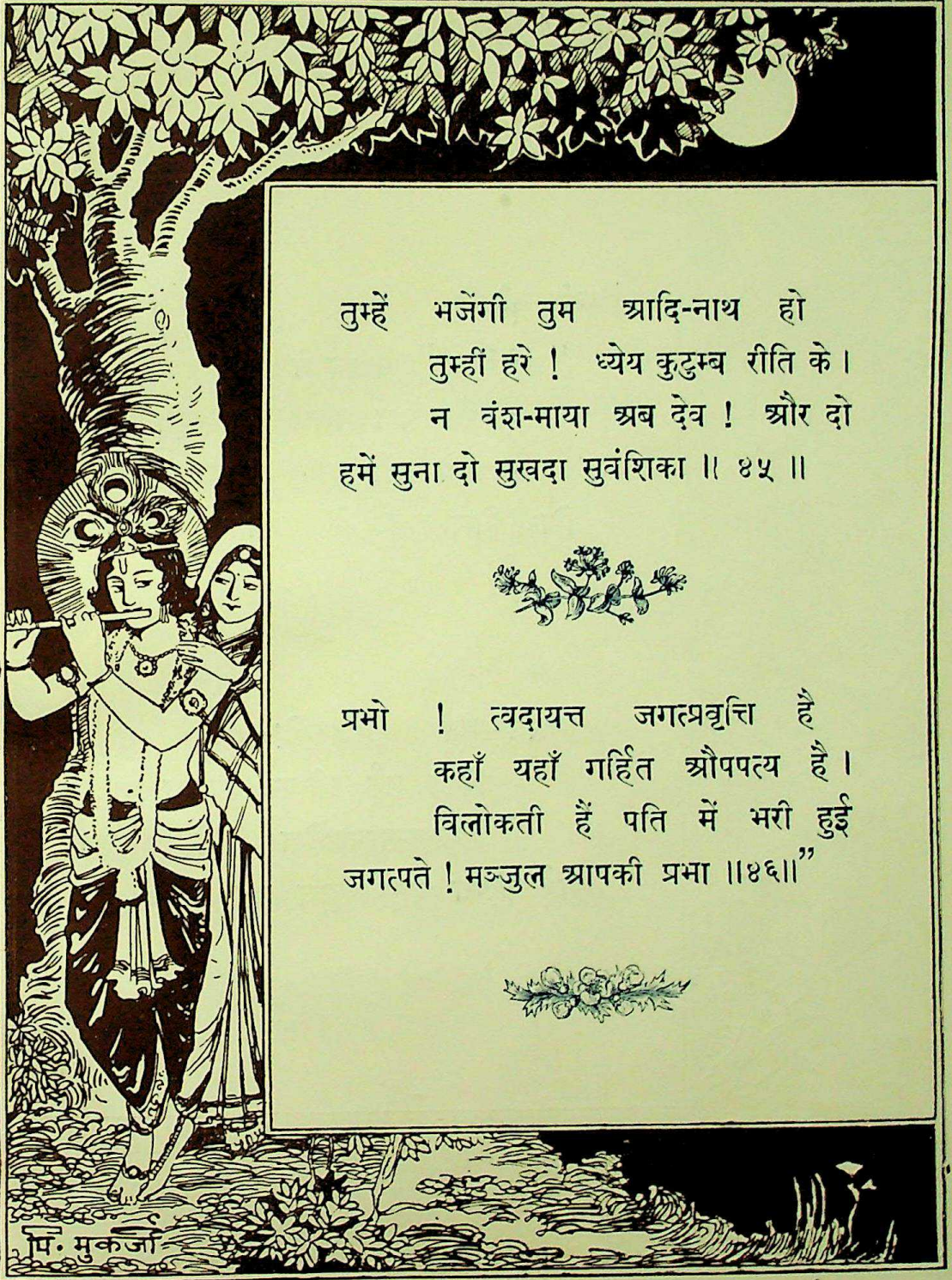
तुम्हें भजेंगी तुम आदि-नाथ हो
तुम्हीं हरे ! ध्येय कुटुम्ब रीति के।
न वंश-माया अब देव ! और दो
हमें सुना दो सुखदा सुवंशिका ॥ ४५ ॥

प्रभो ! त्वदायत्त जगत्प्रवृत्ति है
कहाँ यहाँ गर्हित औपपत्य है।
विलोकती हैं पति में भरी हुई
जगत्पते ! मञ्जुल आपकी प्रभा ॥४६॥"
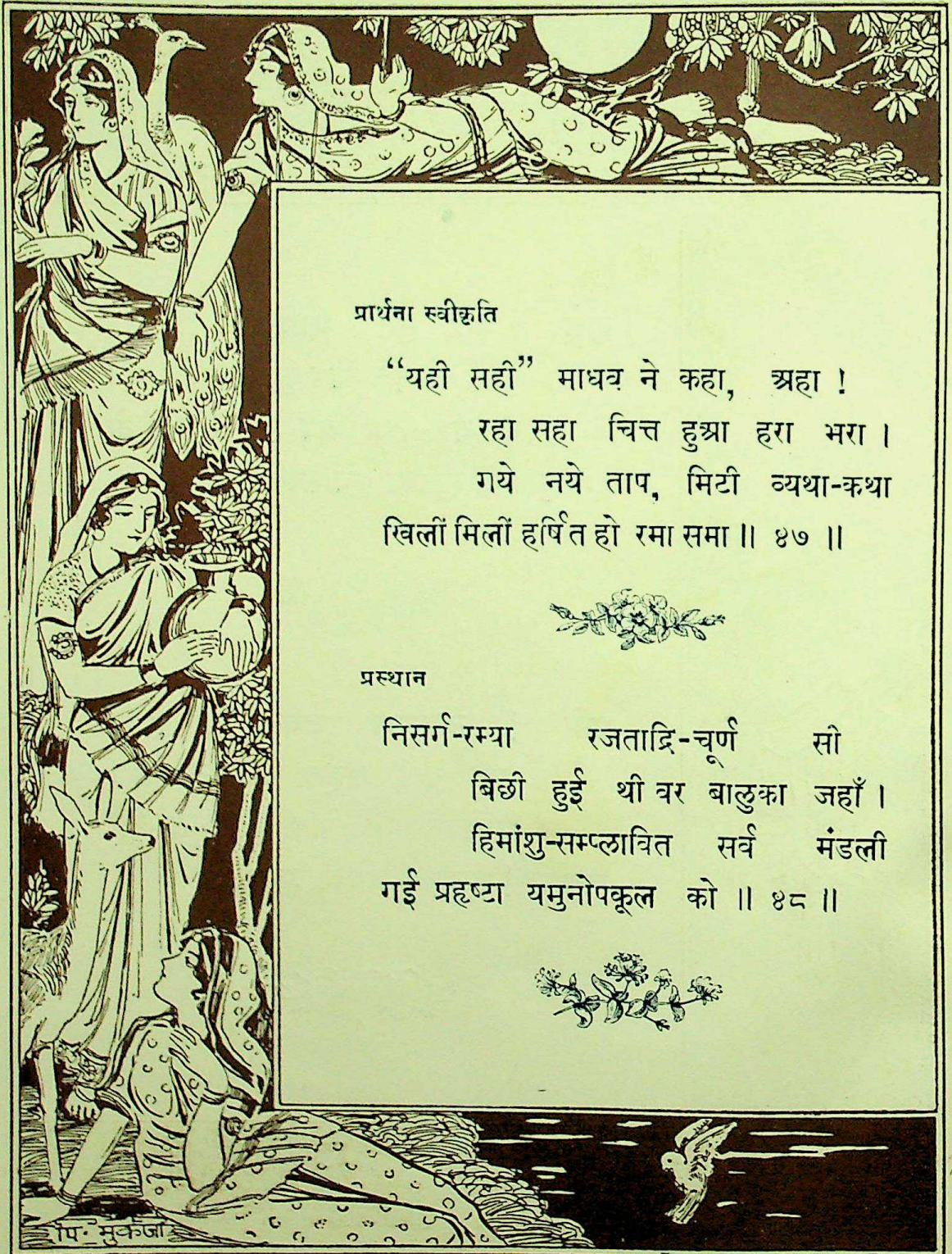
प्रार्थना स्वीकृति

"यही सही" माधव ने कहा, अहा !
रहा सहा चित्त हुआ हरा भरा ।
गये नये ताप, मिटी व्यथा-कथा
खिलीं मिलीं हर्षित हो रमा समा ॥ ४७ ॥

प्रस्थान

निसर्ग-रम्या रजताद्रि-चूर्ण सी
बिछी हुई थी वर बालुका जहाँ ।
हिमांशु-सम्प्लावित सर्व मंडली
गई प्रहृष्टा यमुनोपकूल को ॥ ४८ ॥
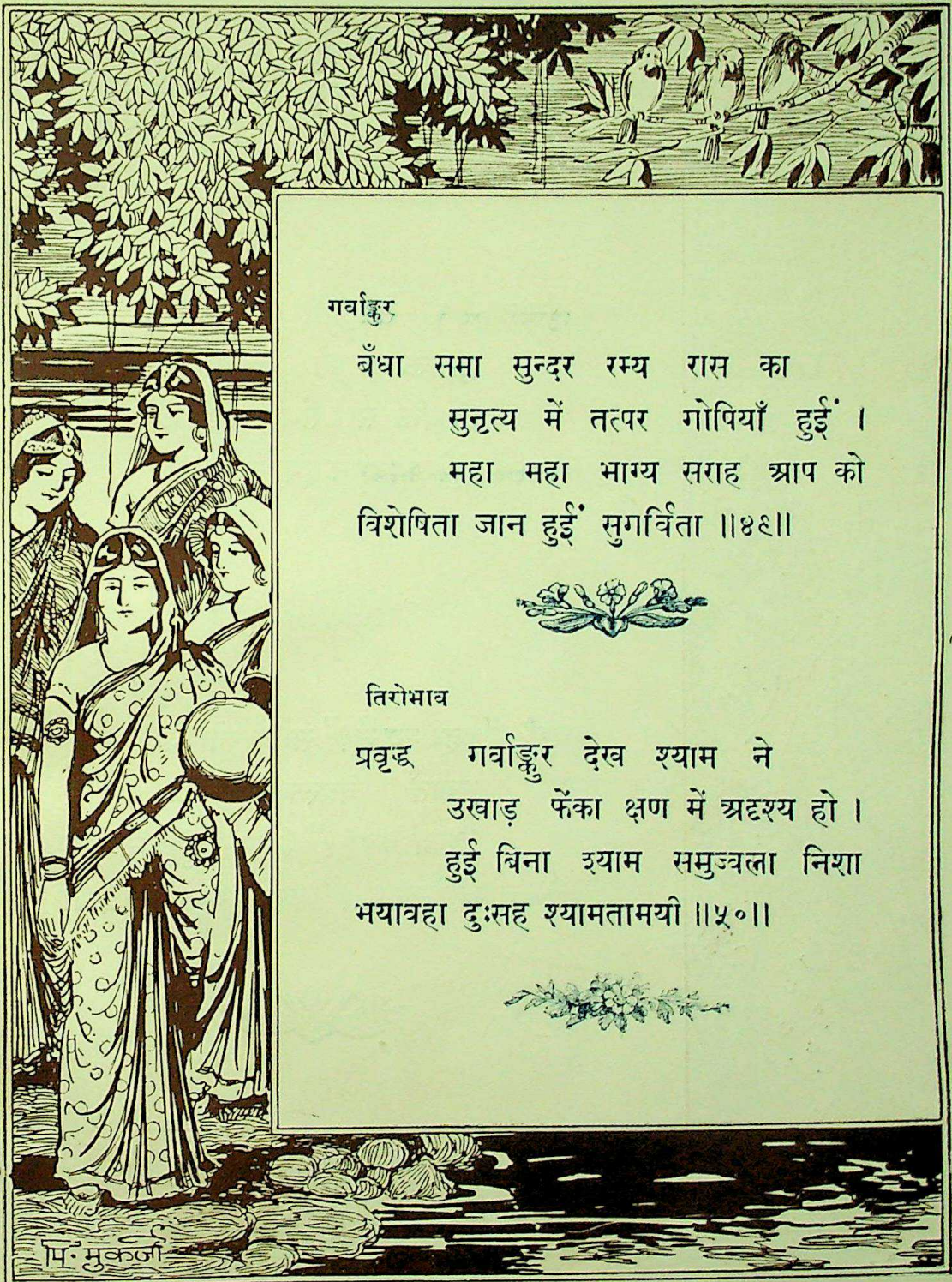
गर्वाङ्कुर

बँधा समा सुन्दर रम्य रास का
सुनृत्य में तत्पर गोपियाँ हुईं ।
महा महा भाग्य सराह आप को
विशेषिता जान हुईं सुगर्विता ॥४९॥

तिरोभाव

प्रवृद्ध गर्वाङ्कुर देख श्याम ने
उखाड़ फेंका क्षण में अदृश्य हो ।
हुई बिना श्याम समुज्वला निशा
भयावहा दुःसह श्यामतामयी ॥५०॥
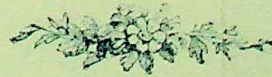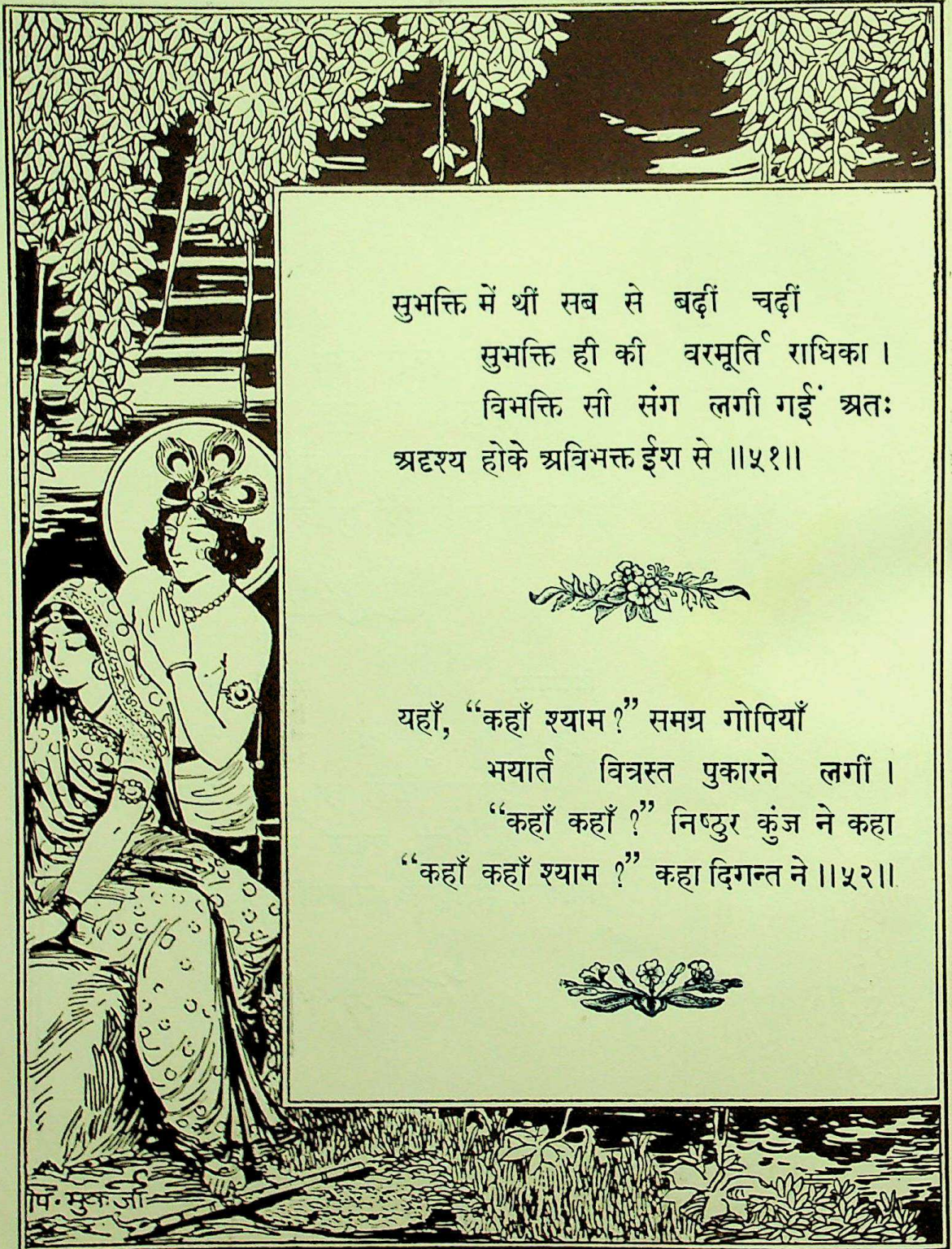
सुभक्ति में थीं सब से बढ़ीं चढ़ीं
सुभक्ति ही की वरमूर्ति राधिका।
विभक्ति सी संग लगी गईं अतः
अदृश्य होके अविभक्त ईश से ॥५१॥

यहाँ, "कहाँ श्याम?" समग्र गोपियाँ
भयार्त वित्रस्त पुकारने लगीं।
"कहाँ कहाँ?" निष्ठुर कुंज ने कहा
"कहाँ कहाँ श्याम?" कहा दिगन्त ने ॥५२॥

युगल झाँकी
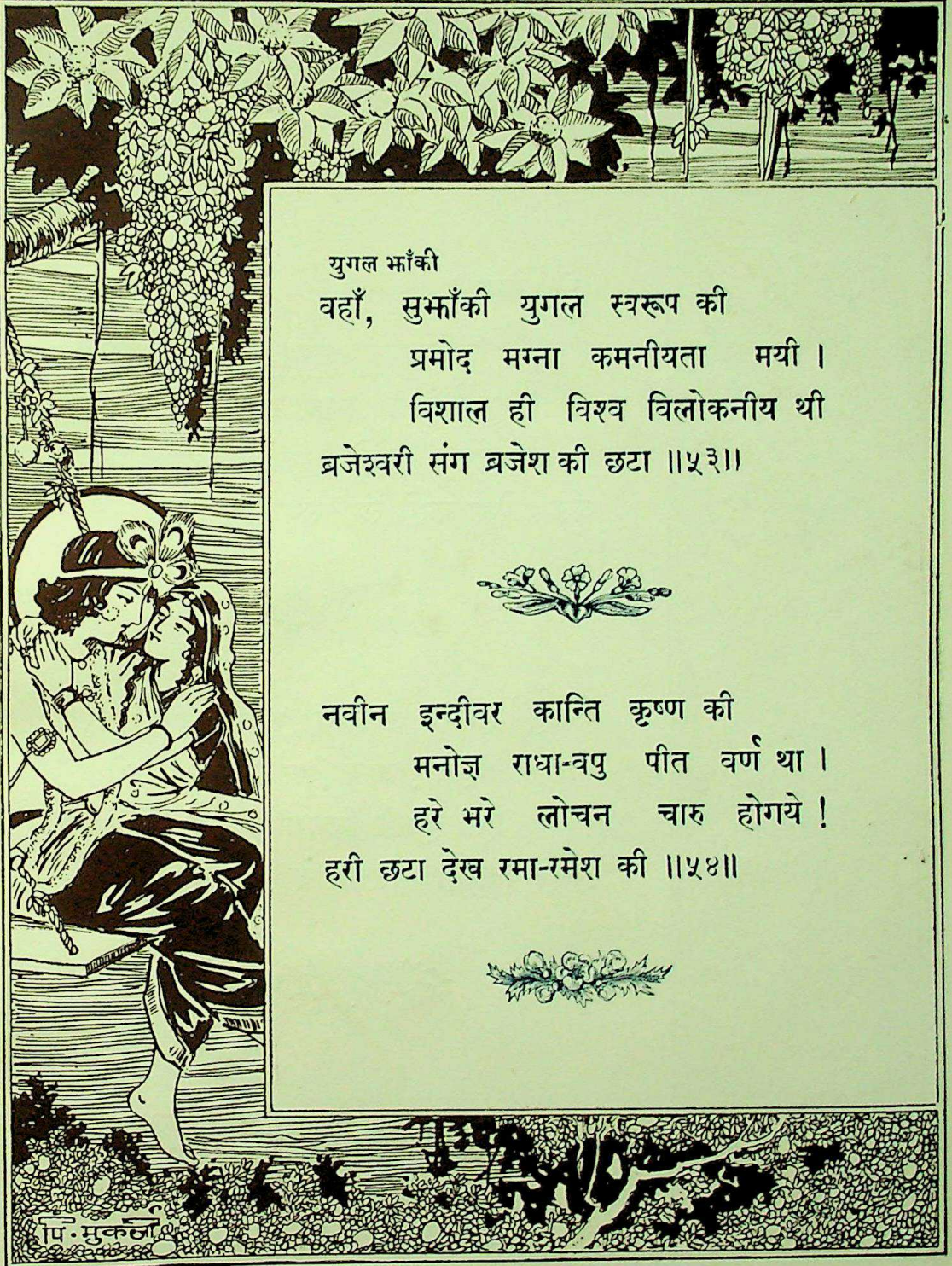
वहाँ, सुझाँकी युगल स्वरूप की
प्रमोद मग्ना कमनीयता मयी ।
विशाल ही विश्व विलोकनीय थी
ब्रजेश्वरी संग ब्रजेश की छटा ॥५३॥

नवीन इन्दीवर कान्ति कृष्ण की
मनोज्ञ राधा-वपु पीत वर्ण था ।
हरे भरे लोचन चारु होगये !
हरी छटा देख रमा-रमेश की ॥५४॥
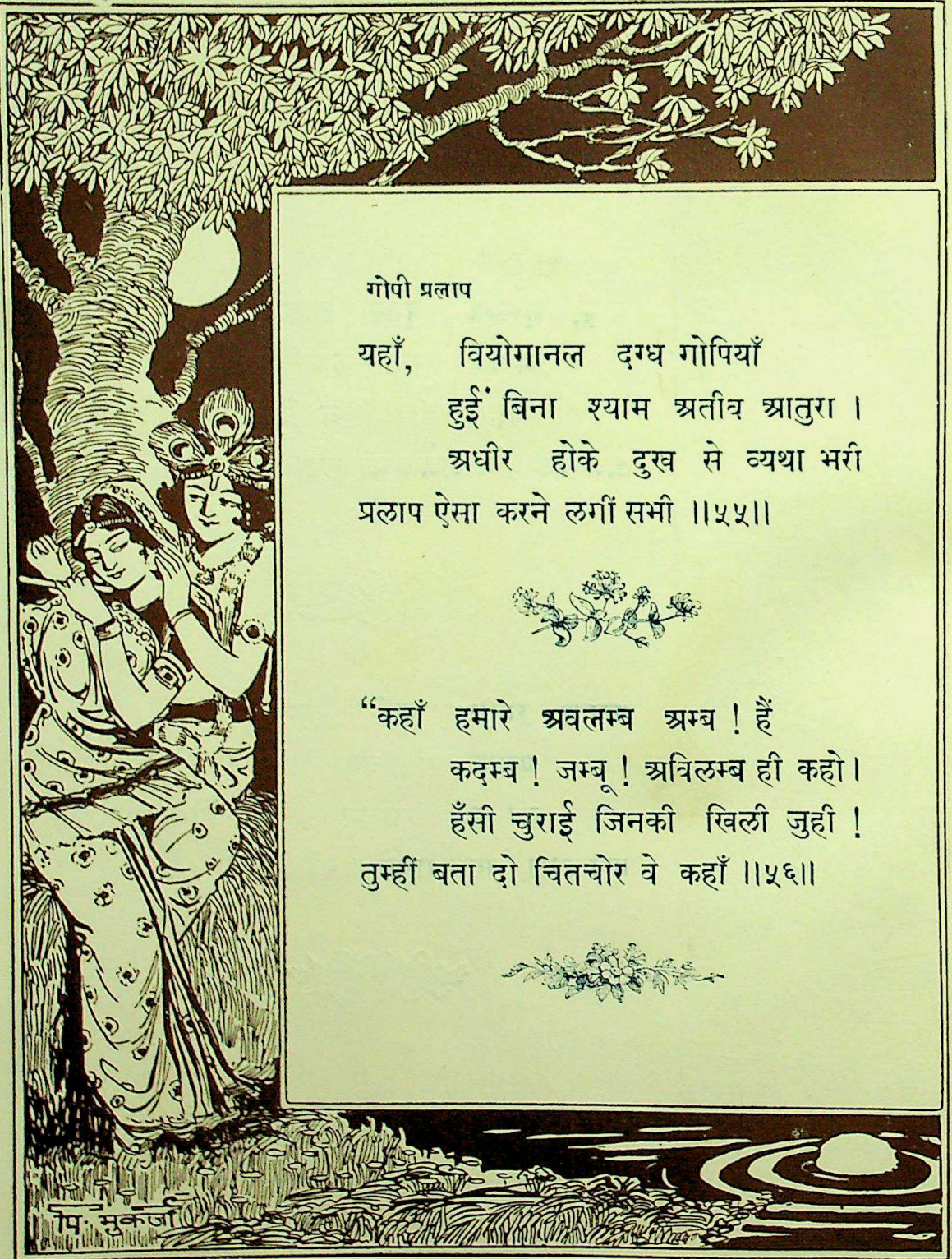
गोपी प्रलाप

यहाँ, वियोगानल दग्ध गोपियाँ
हुईं बिना श्याम अतीव आतुरा ।
अधीर होके दुख से व्यथा भरी
प्रलाप ऐसा करने लगीं सभी ।।५५।।
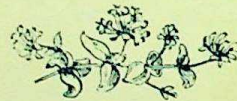
"कहाँ हमारे अवलम्ब अम्ब ! हैं
कदम्ब ! जम्बू ! अविलम्ब ही कहो ।
हँसी चुराई जिनकी खिली जुही !
तुम्हीं बता दो चितचोर वे कहाँ ।।५६।।

प्रसन्न हो क्यों प्रिय की प्रिया अरे
तुम्हीं मिला दो तुलसी ! व्रजेश से ।
कहाँ छिपायी छवि यादवेन्दु की
निकुञ्ज बीथी ! कुछ तो बता हमें ॥५७॥

रसे रसज्ञे ! न सपत्निभाव को
दिखा, बता नन्दकिशोर हैं कहाँ ?
छिपा न यों दर्शन शीघ्र दे हमें
न छीन लेंगी तुझसे व्रजेश को ॥५८॥
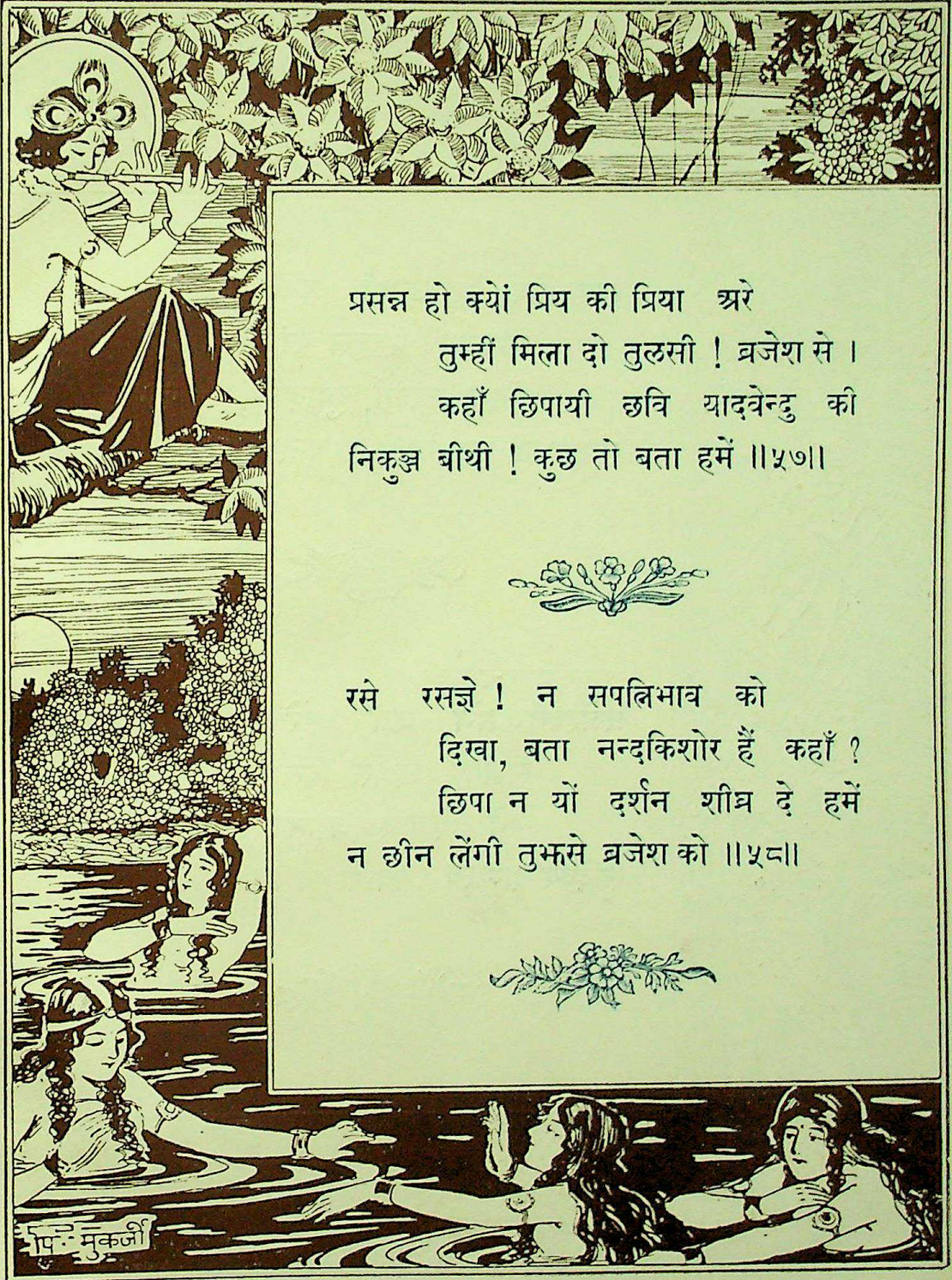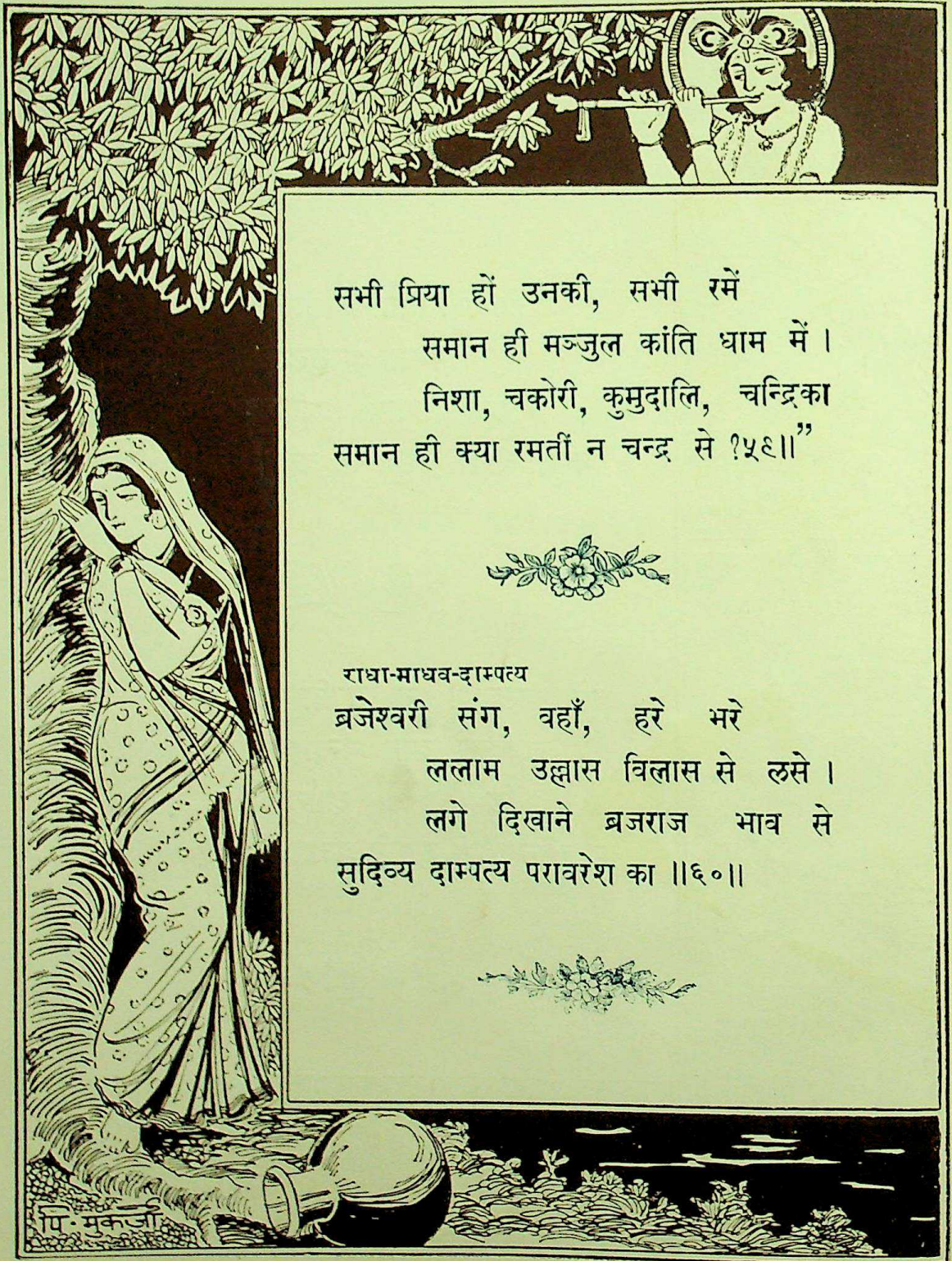
सभी प्रिया हों उनकी, सभी रमें
समान ही मञ्जुल कांति धाम में।
निशा, चकोरी, कुमुदालि, चन्द्रिका
समान ही क्या रमतीं न चन्द्र से ?५९॥”

राधा-माधव-दाम्पत्य

ब्रजेश्वरी संग, वहाँ, हरे भरे
ललाम उल्लास विलास से लसे।
लगे दिखाने ब्रजराज भाव से
सुदिव्य दाम्पत्य परावरेश का ॥६०॥
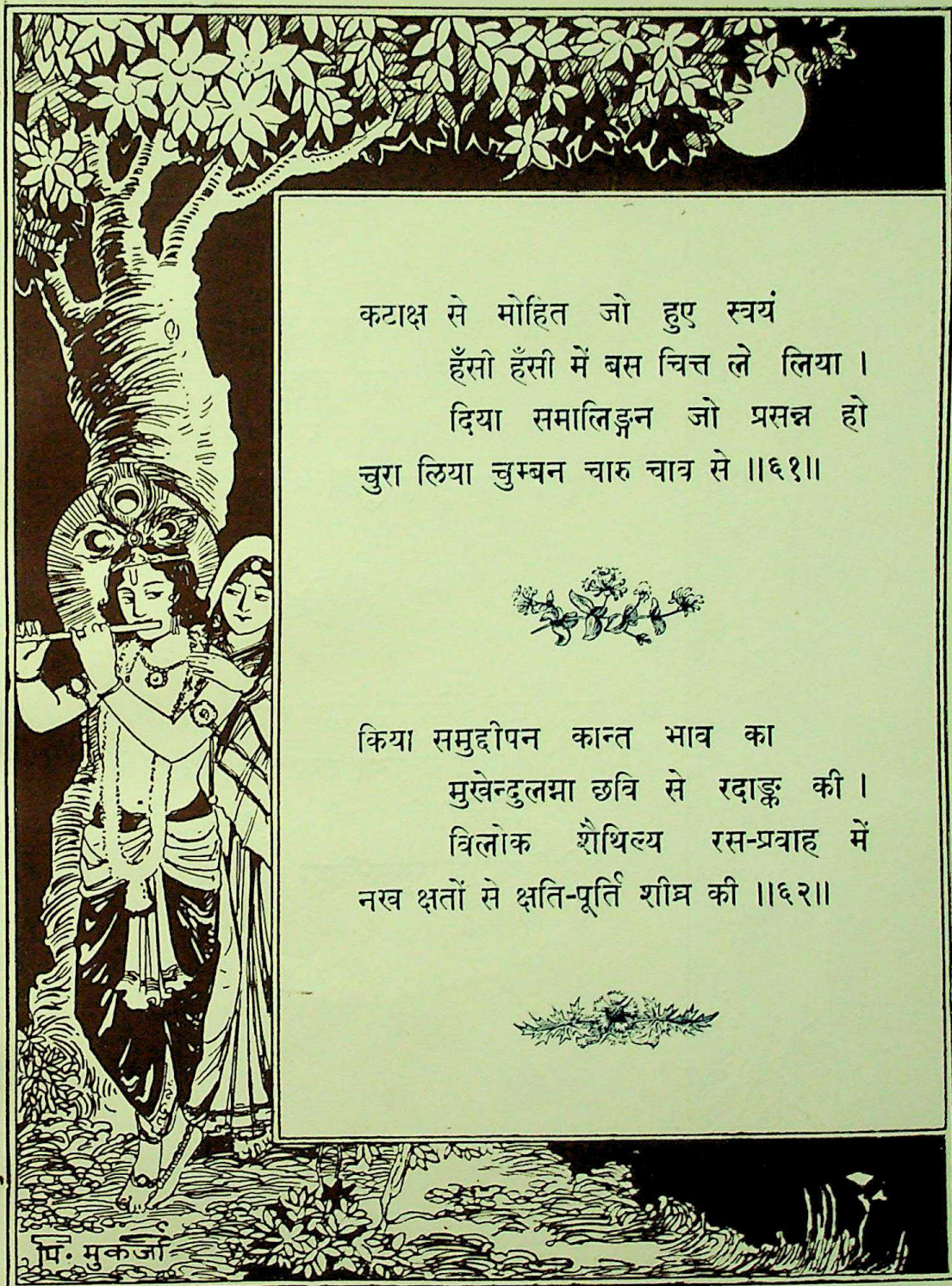
कटाक्ष से मोहित जो हुए स्वयं
हँसी हँसी में बस चित्त ले लिया ।
दिया समालिङ्गन जो प्रसन्न हो
चुरा लिया चुम्बन चारु चाव से ॥६१॥

किया समुद्दीपन कान्त भाव का
मुखेन्दुलक्ष्मा छवि से रदाङ्क की ।
विलोक शैथिल्य रस-प्रवाह में
नख क्षतों से क्षति-पूर्ति शीघ्र की ॥६२॥
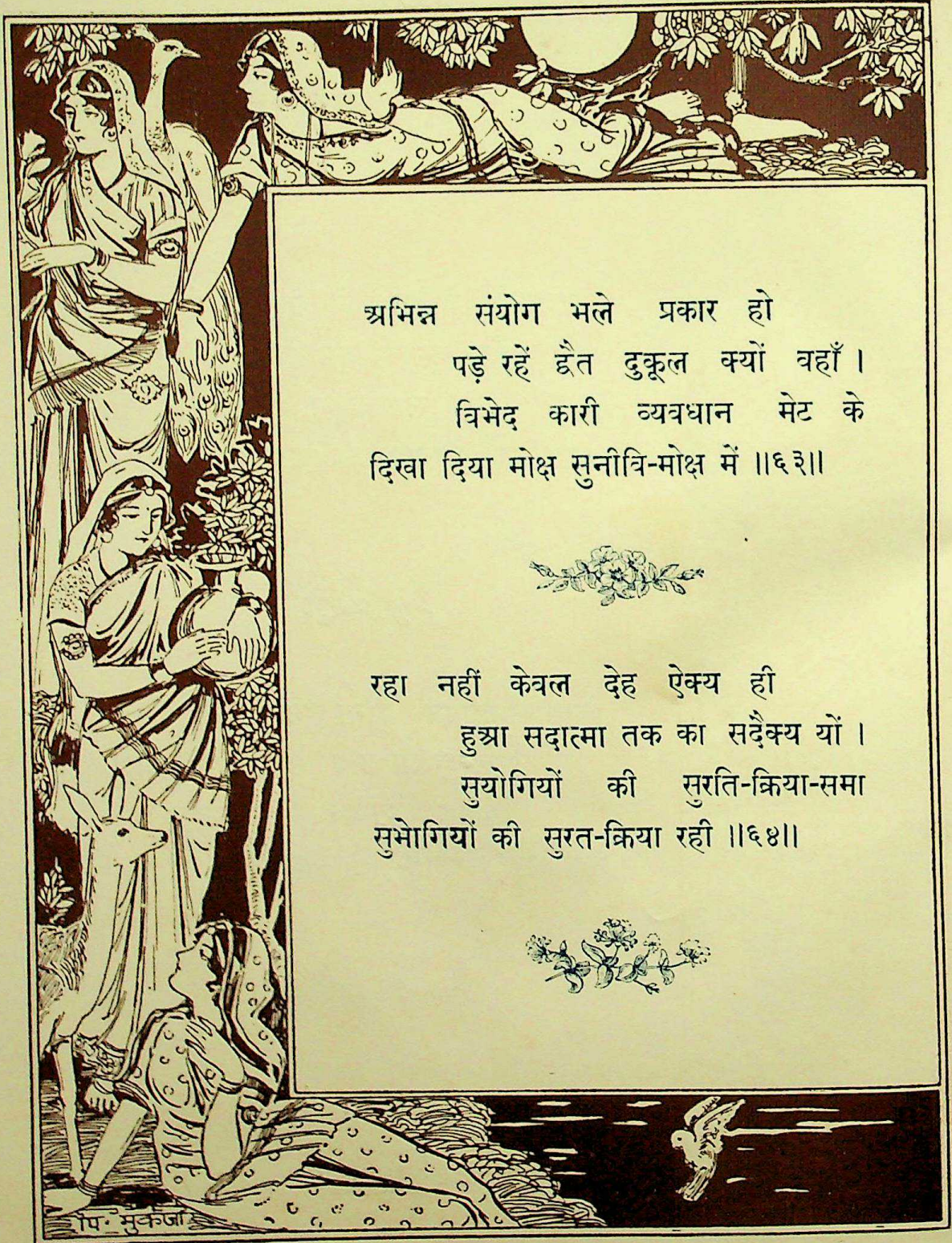
अभिन्न संयोग भले प्रकार हो
पड़े रहें द्वैत दुकूल क्यों वहाँ ।
विभेद कारी व्यवधान मेट के
दिखा दिया मोक्ष सुनीवि-मोक्ष में ॥६३॥
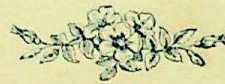
रहा नहीं केवल देह ऐक्य ही
हुआ सदात्मा तक का सदैक्य यों ।
सुयोगियों की सुरति-क्रिया-समा
सुभोगियों की सुरत-क्रिया रही ॥६४॥
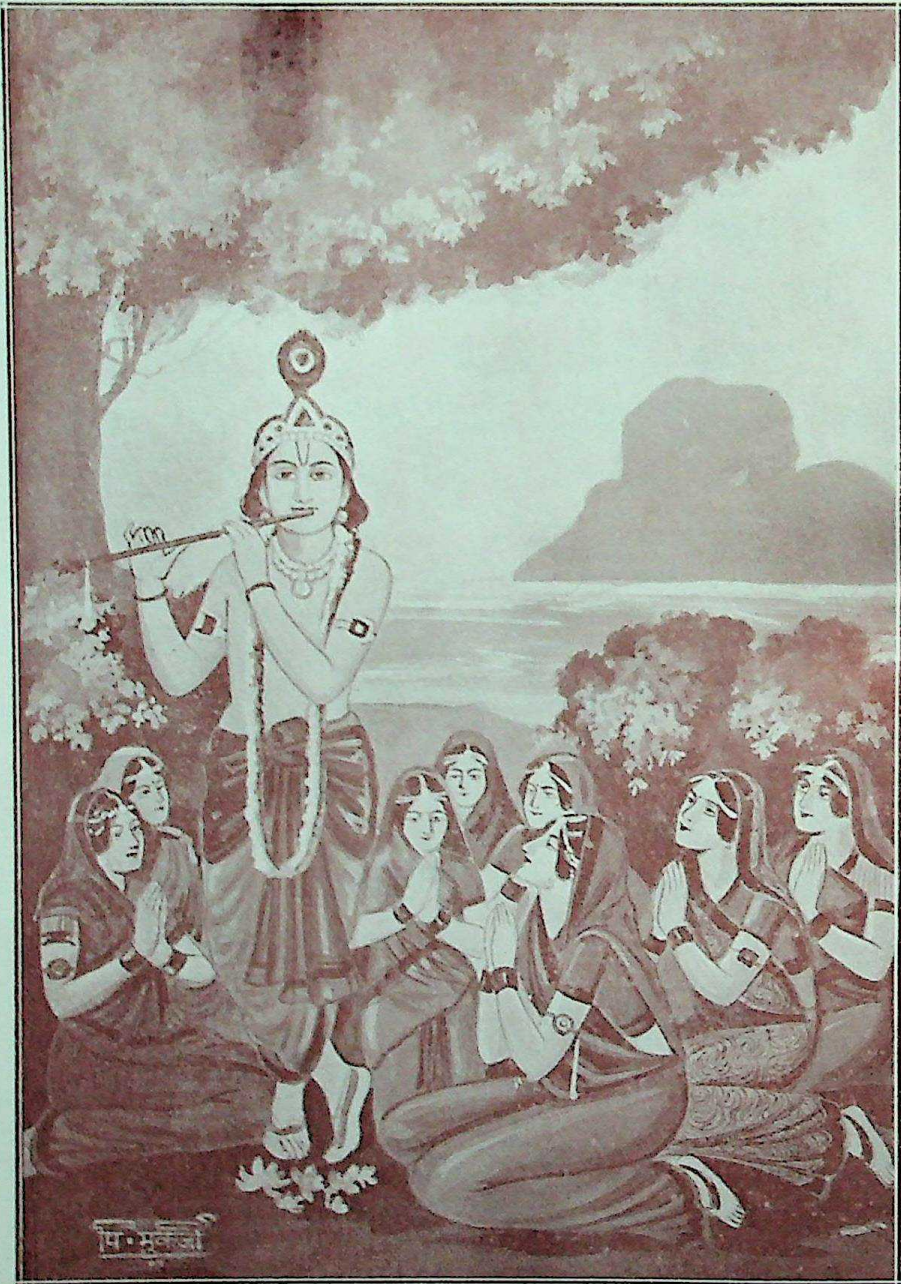
व्रजेश-संस्तुति
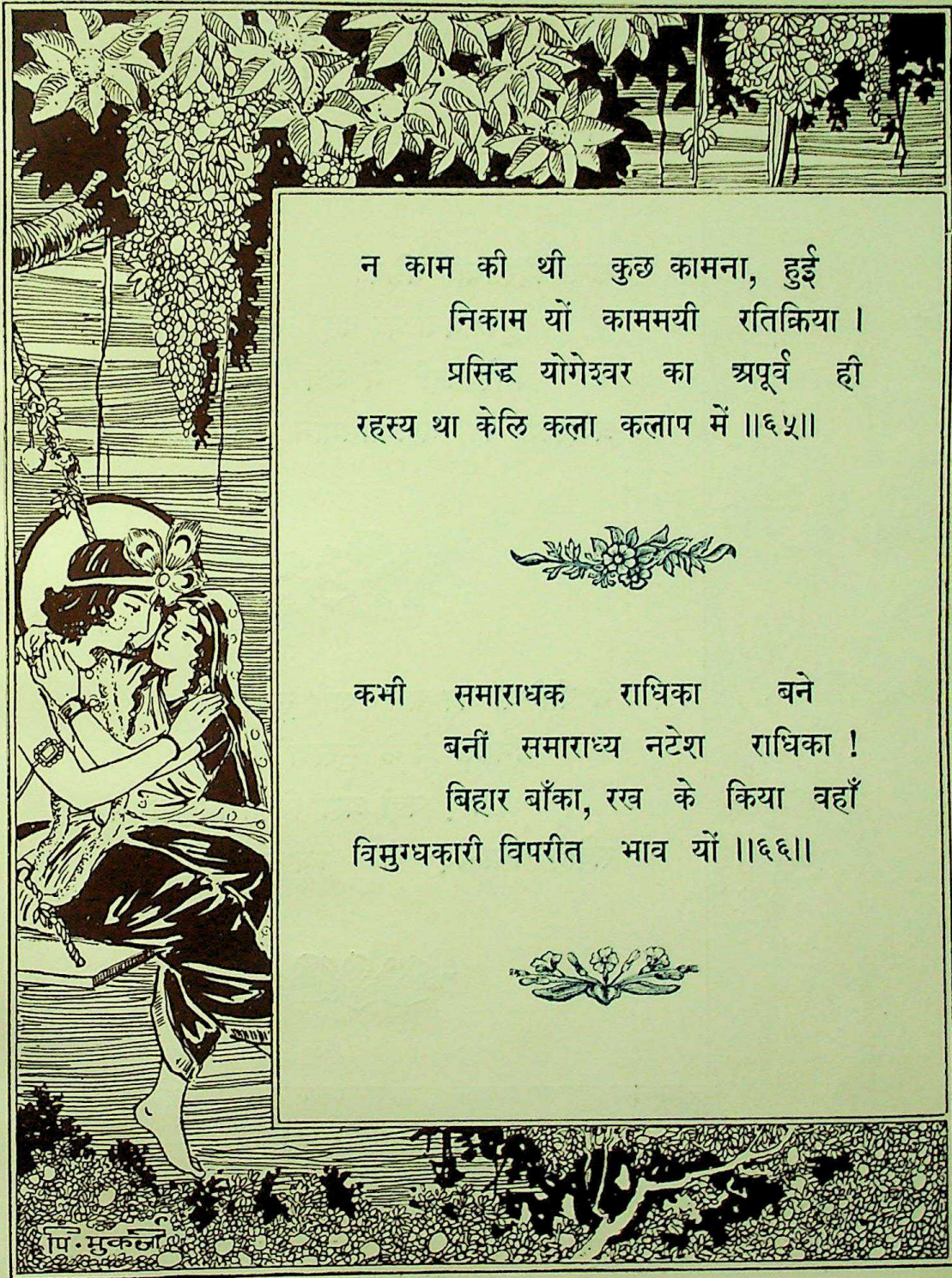
न काम की थी कुछ कामना, हुई
निकाम यों काममयी रतिक्रिया ।
प्रसिद्ध योगेश्वर का अपूर्व ही
रहस्य था केलि कला कलाप में ॥६५॥

कभी समाराधक राधिका बने
बनीं समाराध्य नटेश राधिका !
बिहार बाँका, रख के किया वहाँ
विमुग्धकारी विपरीत भाव यों ॥६६॥
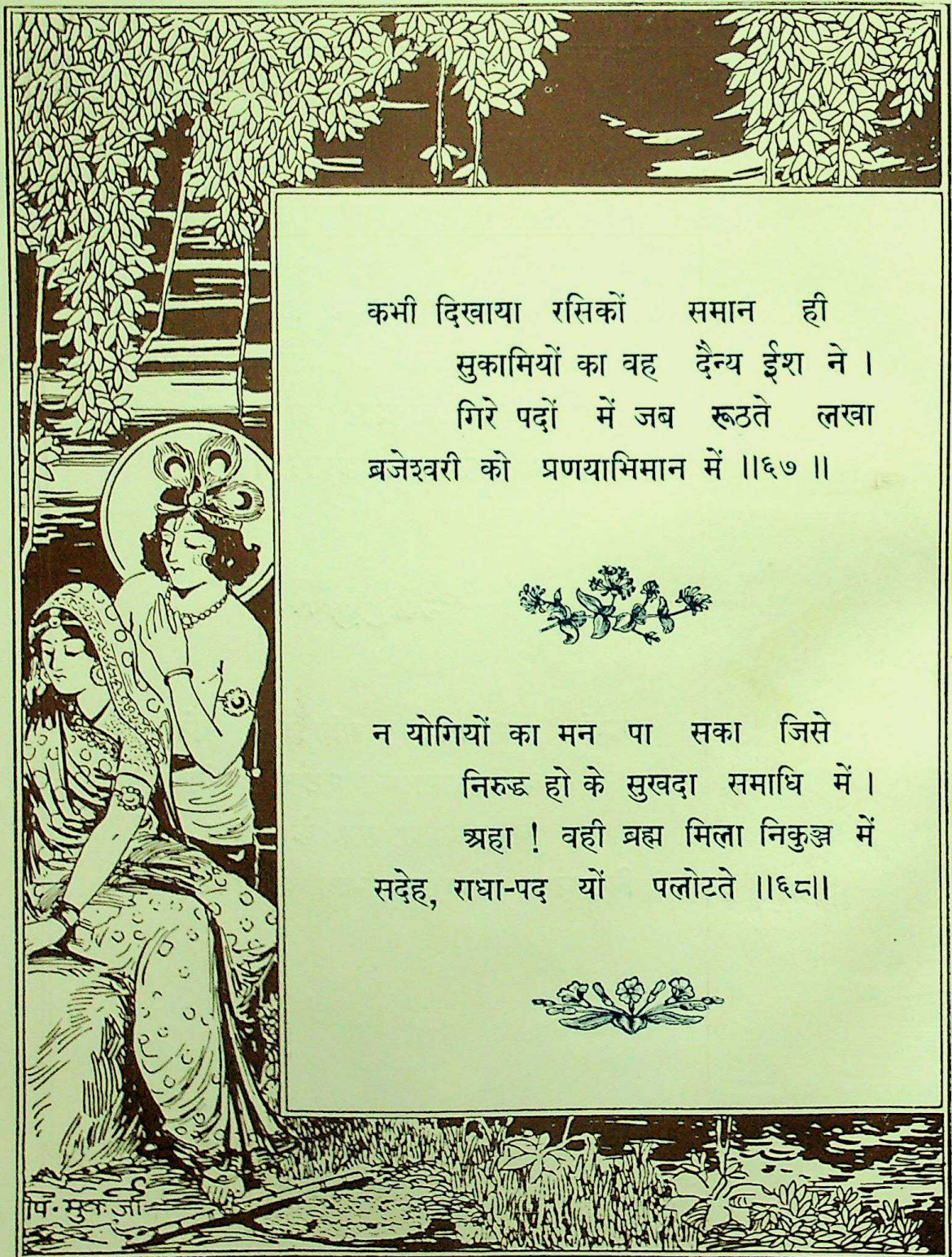
कभी दिखाया रसिकों समान ही
सुकामियों का वह दैन्य ईश ने ।
गिरे पदों में जब रूठते लखा
ब्रजेश्वरी को प्रणयाभिमान में ।।६७ ।।

न योगियों का मन पा सका जिसे
निरुद्ध हो के सुखदा समाधि में ।
अहा ! वही ब्रह्म मिला निकुञ्ज में
सदेह, राधा-पद यों पलोटते ।।६८।।
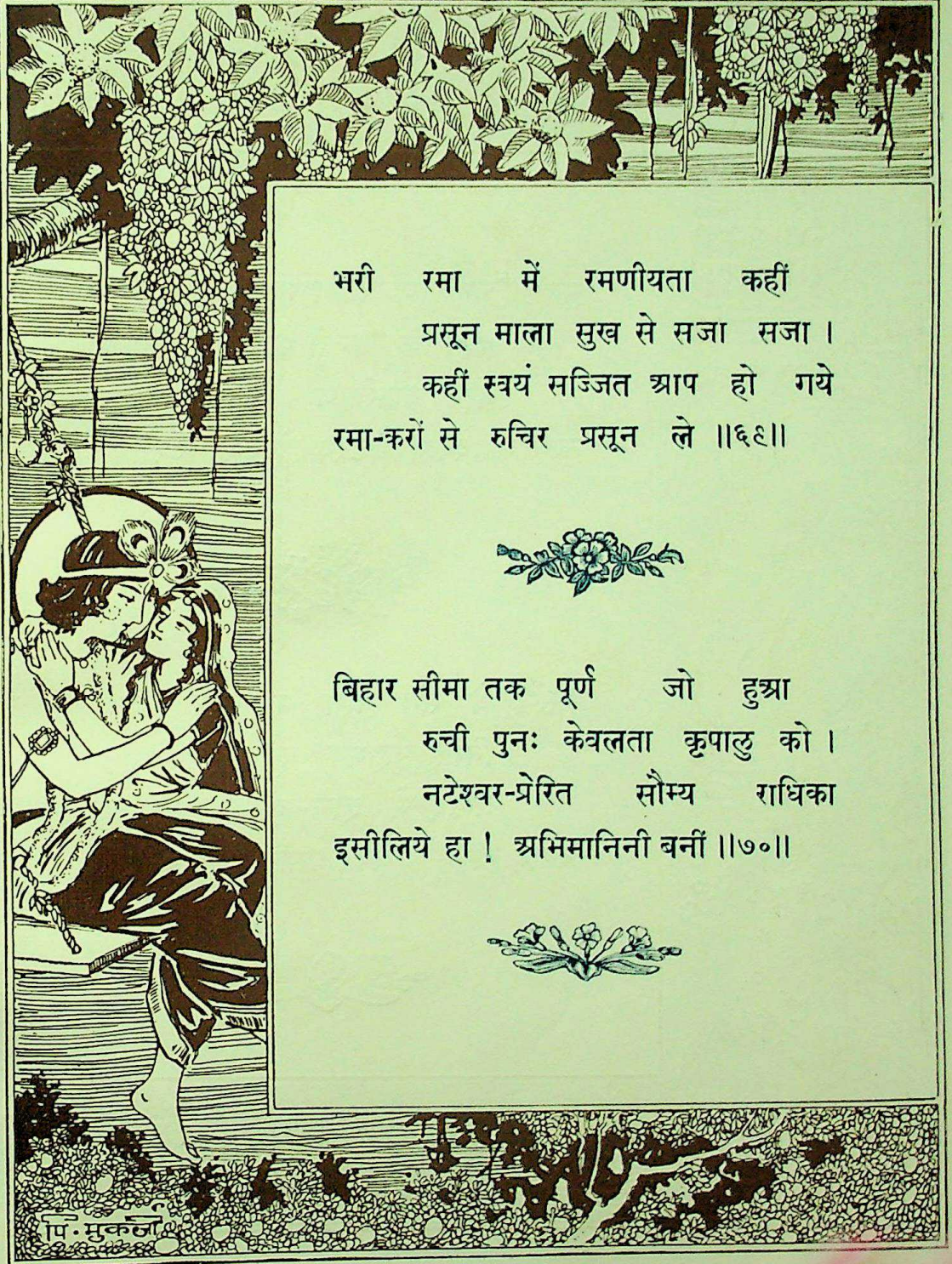
भरी रमा में रमणीयता कहीं
प्रसून माला सुख से सजा सजा।
कहीं स्वयं सज्जित आप हो गये
रमा-करों से रुचिर प्रसून ले ॥६९॥

बिहार सीमा तक पूर्ण जो हुआ
रुची पुनः केवलता कृपालु को।
नटेश्वर-प्रेरित सौम्य राधिका
इसीलिये हा! अभिमानिनी बनीं ॥७०॥
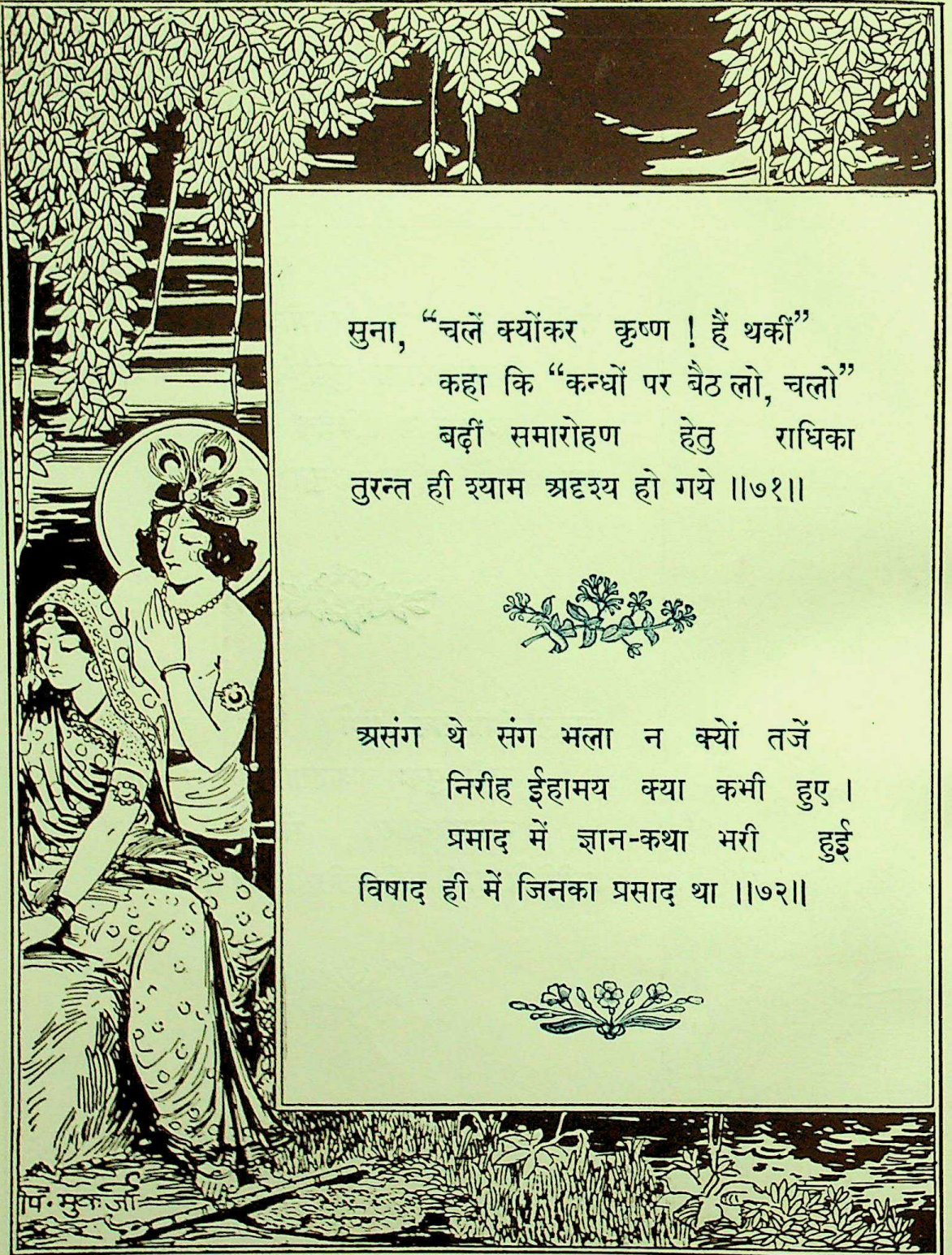
सुना, "चलें क्योंकर कृष्ण ! हैं थकीं"
कहा कि "कन्धों पर बैठ लो, चलो"
बढ़ीं समारोहण हेतु राधिका
तुरन्त ही श्याम अदृश्य हो गये ।।७१।।

असंग थे संग भला न क्यों तजें
निरीह ईहामय क्या कभी हुए ।
प्रमाद में ज्ञान-कथा भरी हुई
विषाद ही में जिनका प्रसाद था ।।७२।।
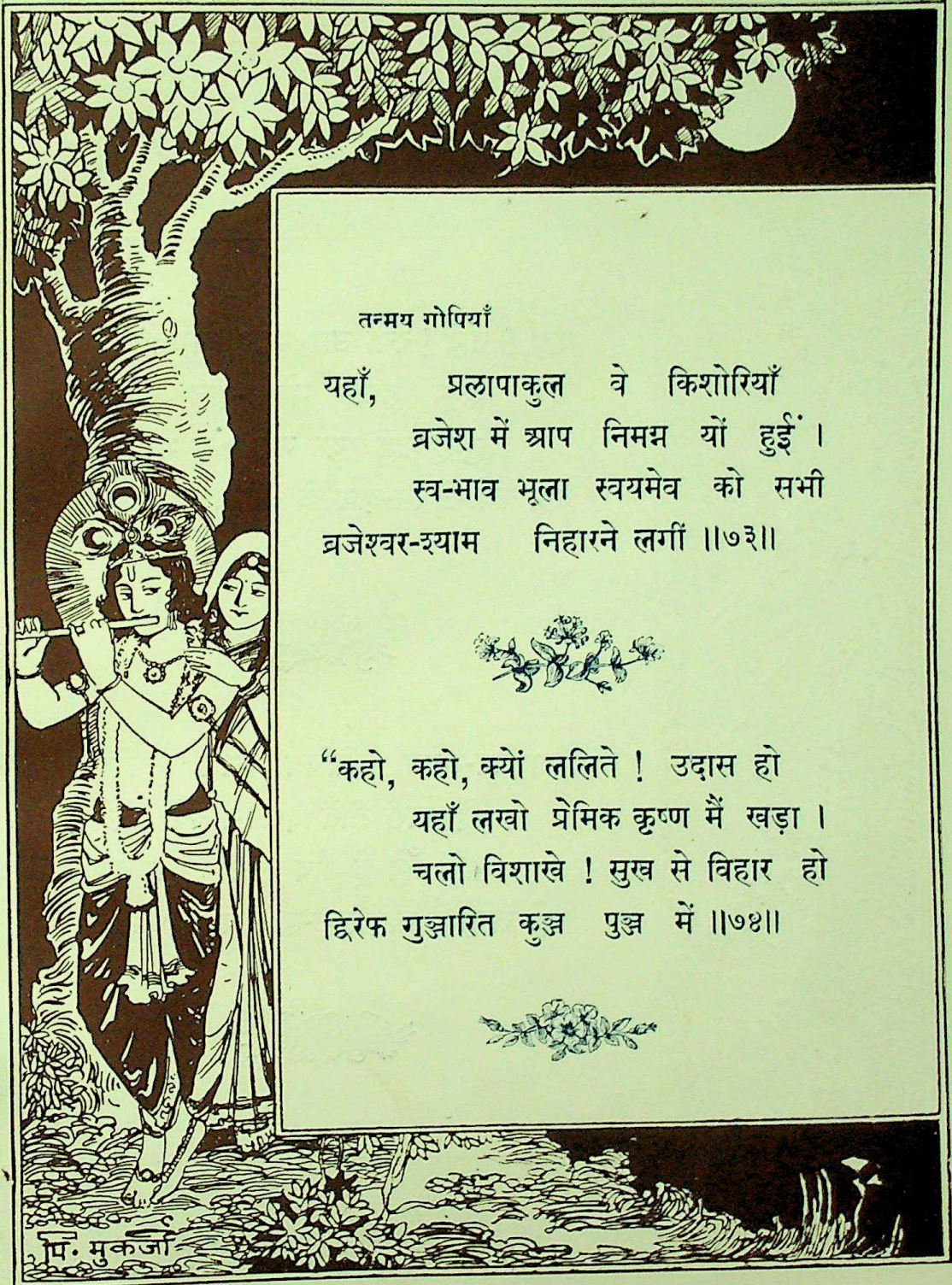
तन्मय गोपियाँ

यहाँ, प्रलापाकुल वे किशोरियाँ
व्रजेश में आप निमग्न यों हुईं ।
स्व-भाव भूला स्वयमेव को सभी
व्रजेश्वर-श्याम निहारने लगीं ॥७३॥
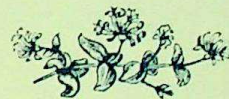
"कहो, कहो, क्यों ललिते ! उदास हो
यहाँ लखो प्रेमिक कृष्ण मैं खड़ा ।
चलो विशाखे ! सुख से विहार हो
द्विरेफ गुञ्जारित कुञ्ज पुञ्ज में ॥७४॥

यहाँ ! यहाँ ! क्यों उस ओर भागतीं ?
खड़ा हुआ गोरस-दान मांगने ।
तुम्हें नहीं क्या भय कंस भूप का ?
नहीं बचोगी रस-दान के बिना ।।७५।।

रचा व्रत-स्नान विचित्र नग्न हो
दिगम्बरी रीति दिखा न क्यों चलो !
यहां टँगे हैं सब चीर वृक्ष पै
बढ़ो स्पृहा है यदि इष्ट-लाभ की ।।७६।।
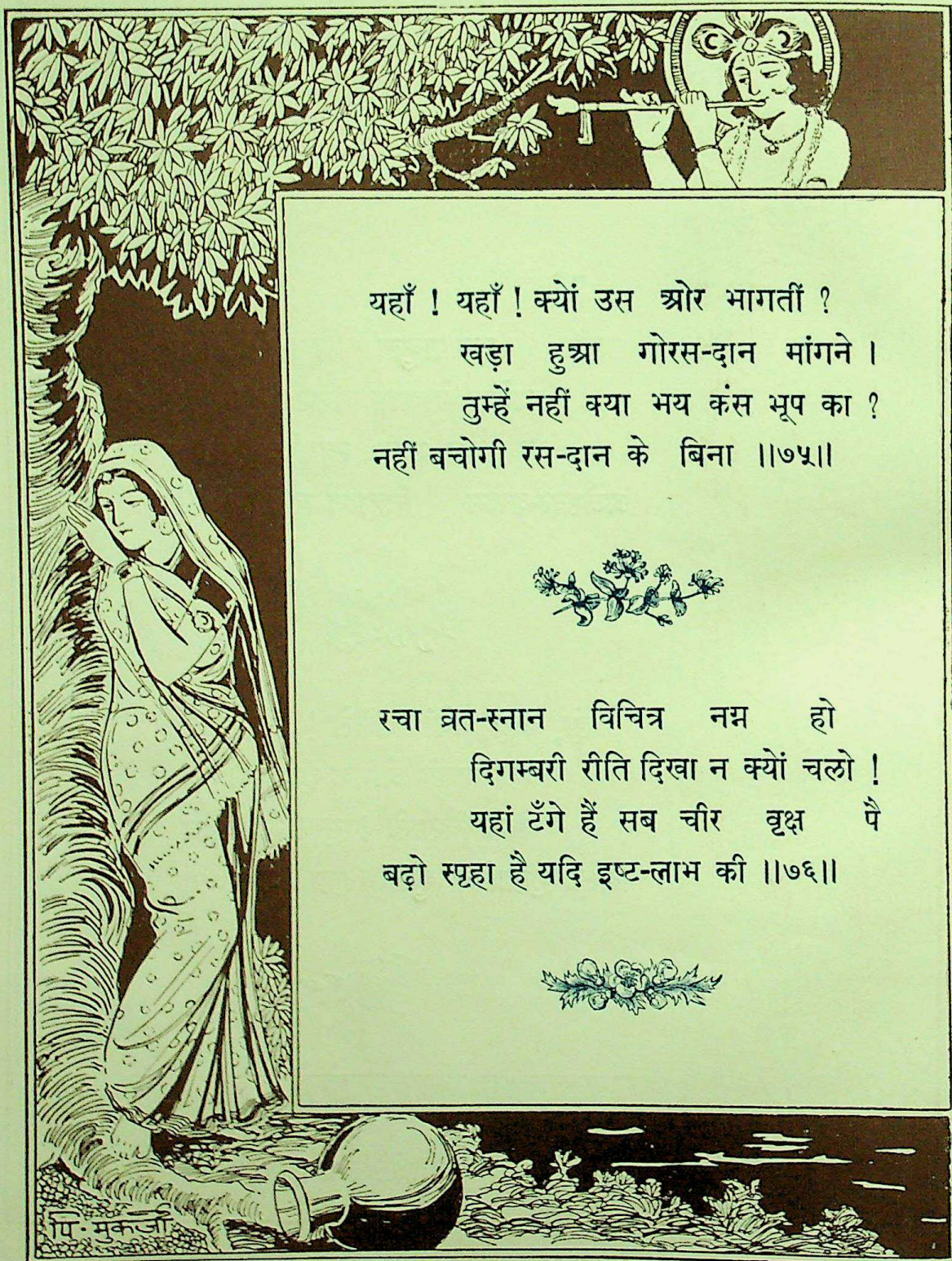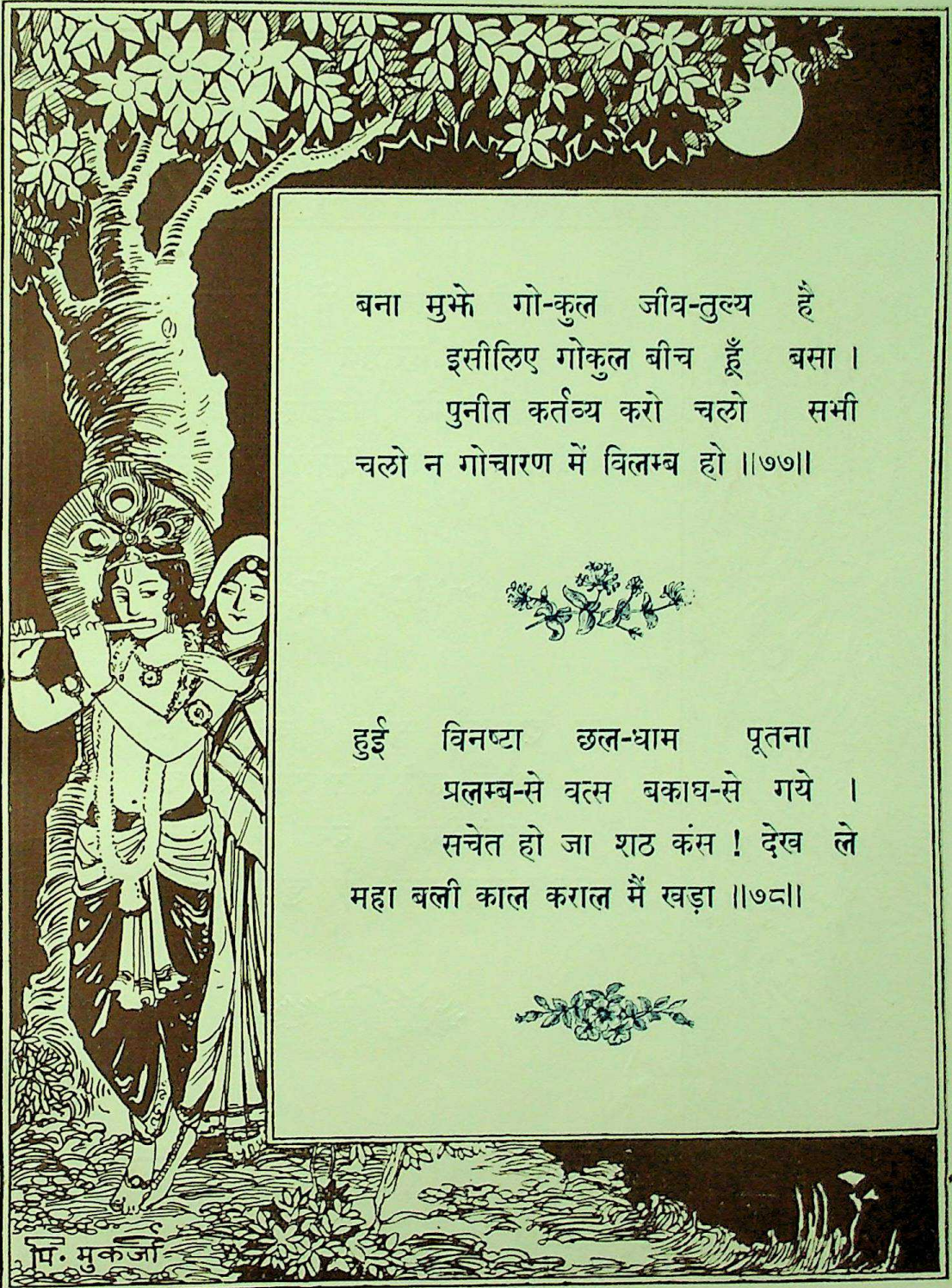
बना मुझे गो-कुल जीव-तुल्य है
इसीलिए गोकुल बीच हूँ बसा ।
पुनीत कर्तव्य करो चलो सभी
चलो न गोचारण में विलम्ब हो ।।७७।।

हुई विनष्टा छल-धाम पूतना
प्रलम्ब-से वत्स बकाघ-से गये ।
सचेत हो जा शठ कंस ! देख ले
महा बली काल कराल मैं खड़ा ।।७८।।
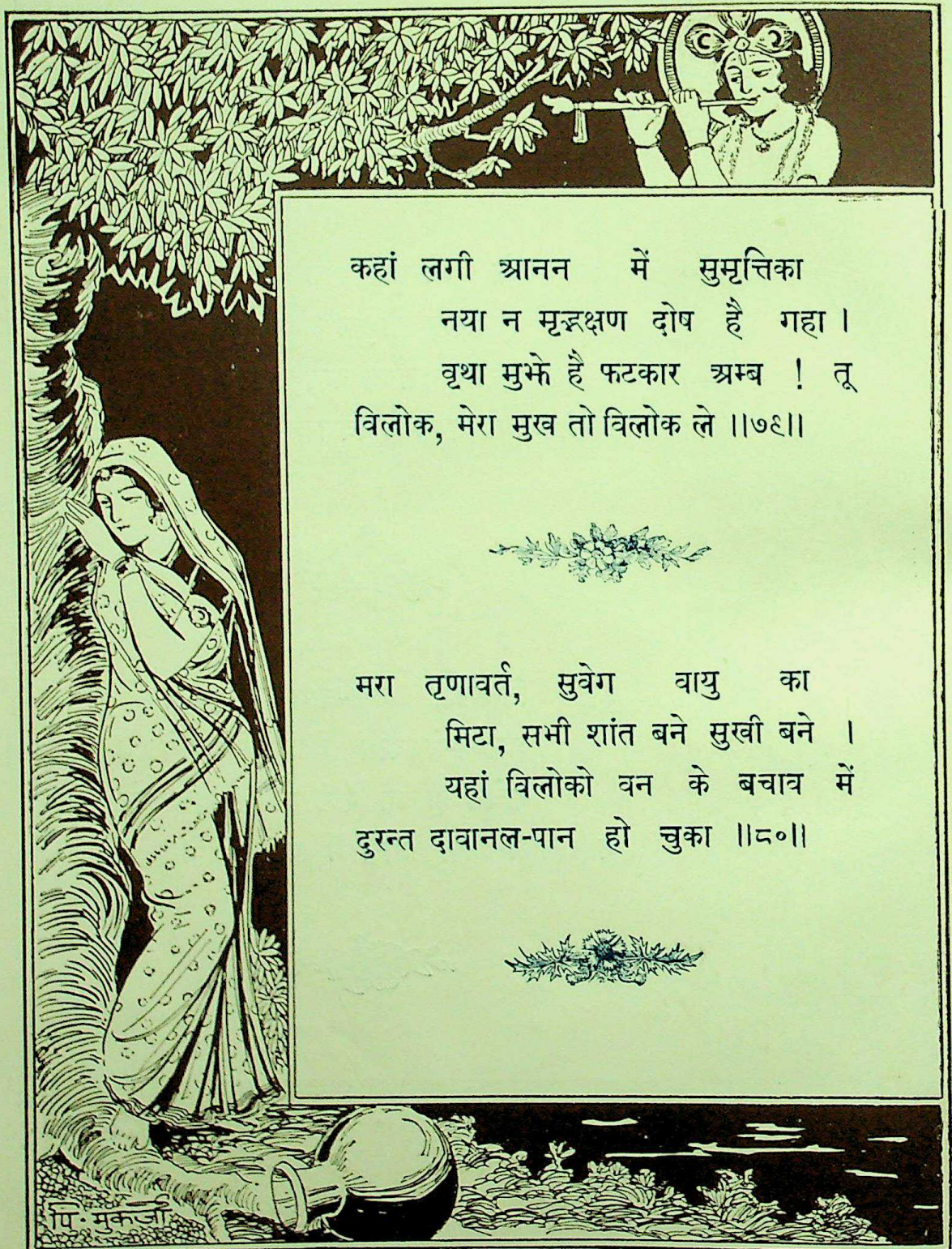
कहां लगी आनन में सुमृत्तिका
नया न मृद्भक्षण दोष है गहा ।
वृथा मुझे है फटकार अम्ब ! तू
विलोक, मेरा मुख तो विलोक ले ।।७९।।
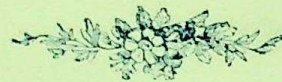
मरा तृणावर्त, सुवेग वायु का
मिटा, सभी शांत बने सुखी बने ।
यहां विलोको वन के बचाव में
दुरन्त दावानल-पान हो चुका ।।८०।।

न इन्द्र की है कुछ भीति, शांत हो
कनिष्ठिका पै गिरिराज है खड़ा ।
हुआ सुधा-सा जल, नाग है नथा
त्रिभीति सारी अब गोप! दूर हो ।।८१।।

चुरा चुके माखन, कुंज कोट में
चलो चलें, हाँ बलबीर! जा छिपें ।"
सभी इसी भांति सुभाव में भरीं
व्रजेश-लीला-अनुगामिनी बनीं।।८२।।
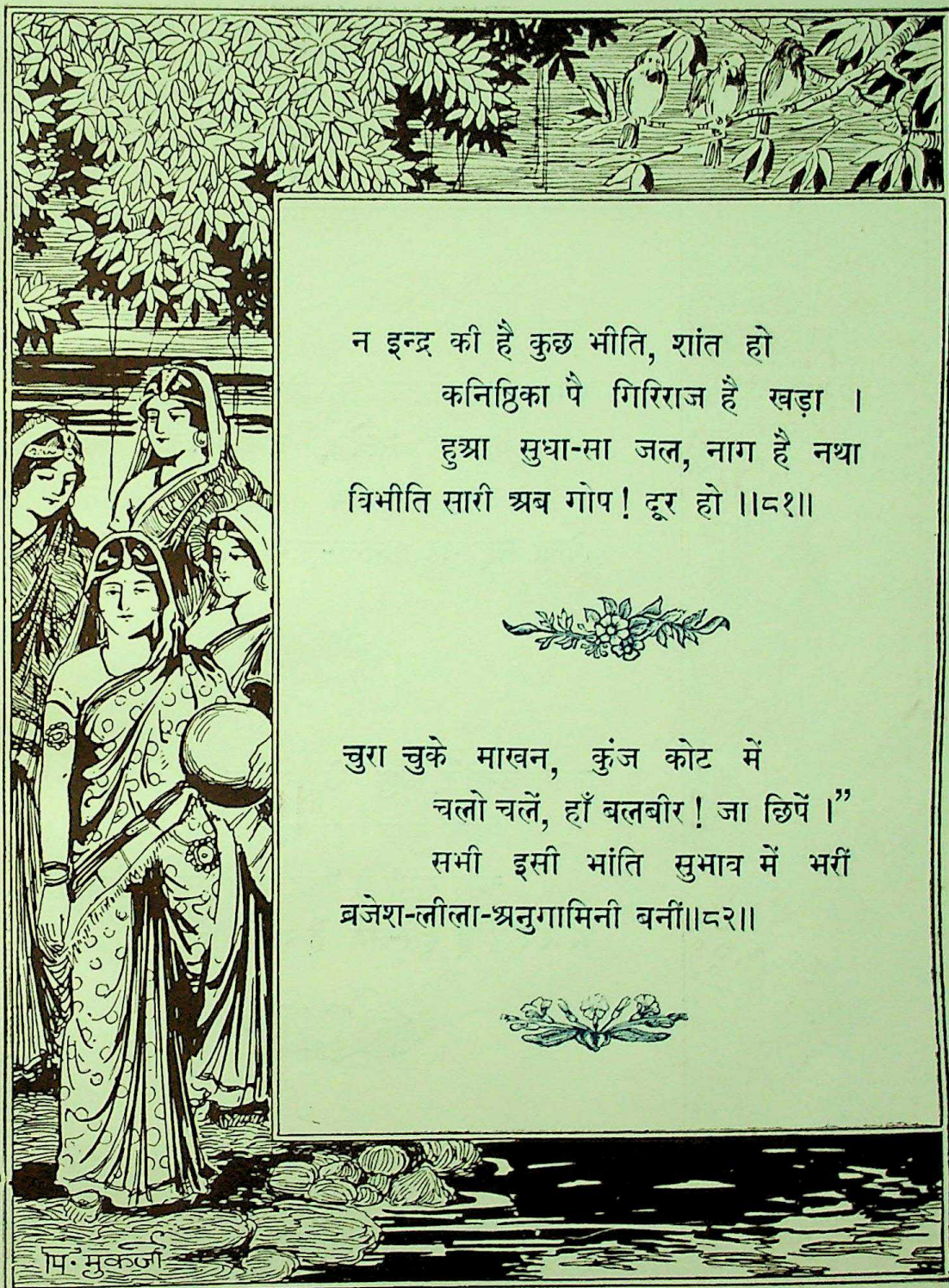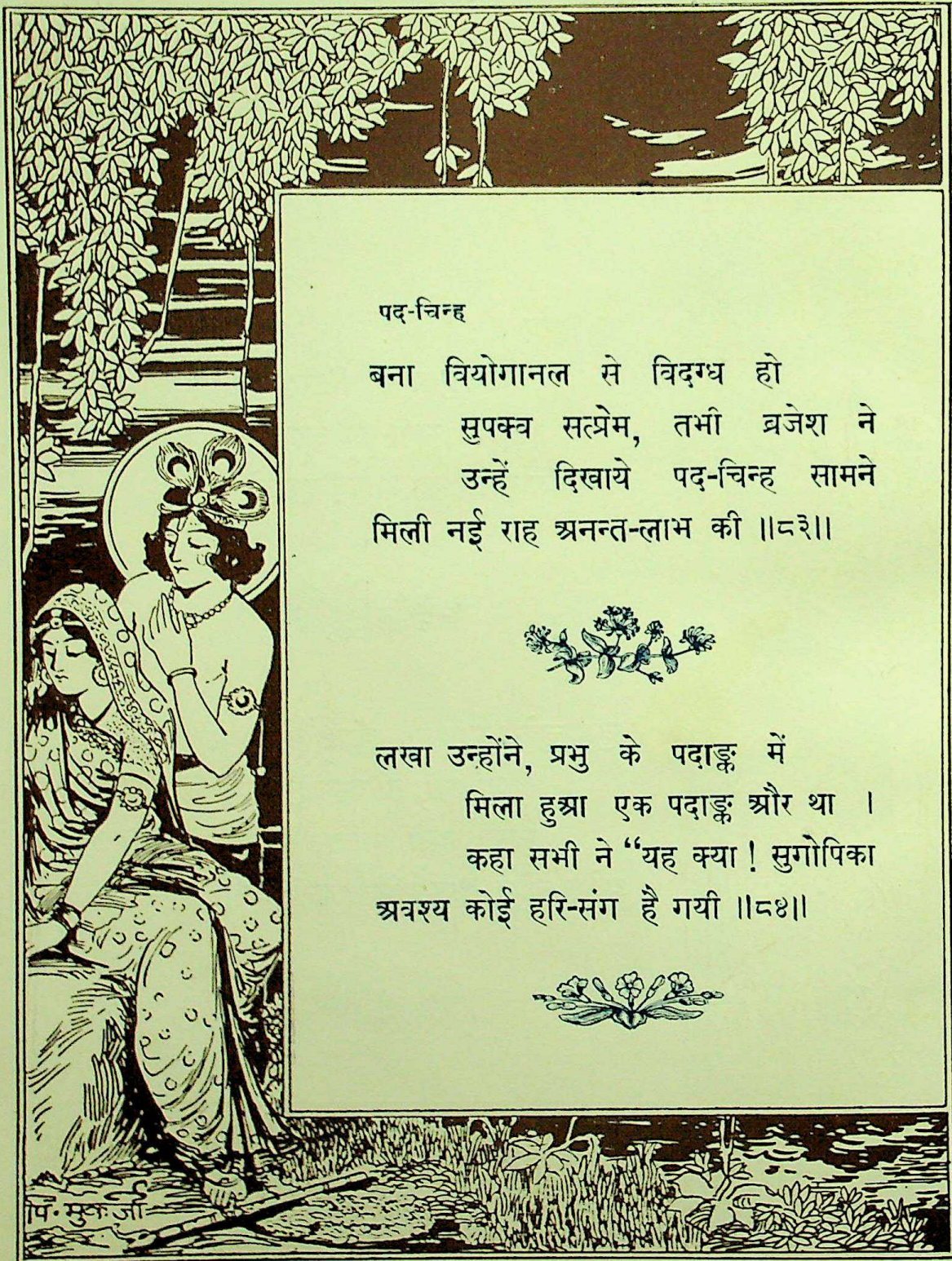
पद-चिन्ह

बना वियोगानल से विदग्ध हो
सुपक्व सत्प्रेम, तभी ब्रजेश ने
उन्हें दिखाये पद-चिन्ह सामने
मिली नई राह अनन्त-लाभ की ॥८३॥

लखा उन्होंने, प्रभु के पदाङ्क में
मिला हुआ एक पदाङ्क और था ।
कहा सभी ने "यह क्या! सुगोपिका
अवश्य कोई हरि-संग है गयी ॥८४॥
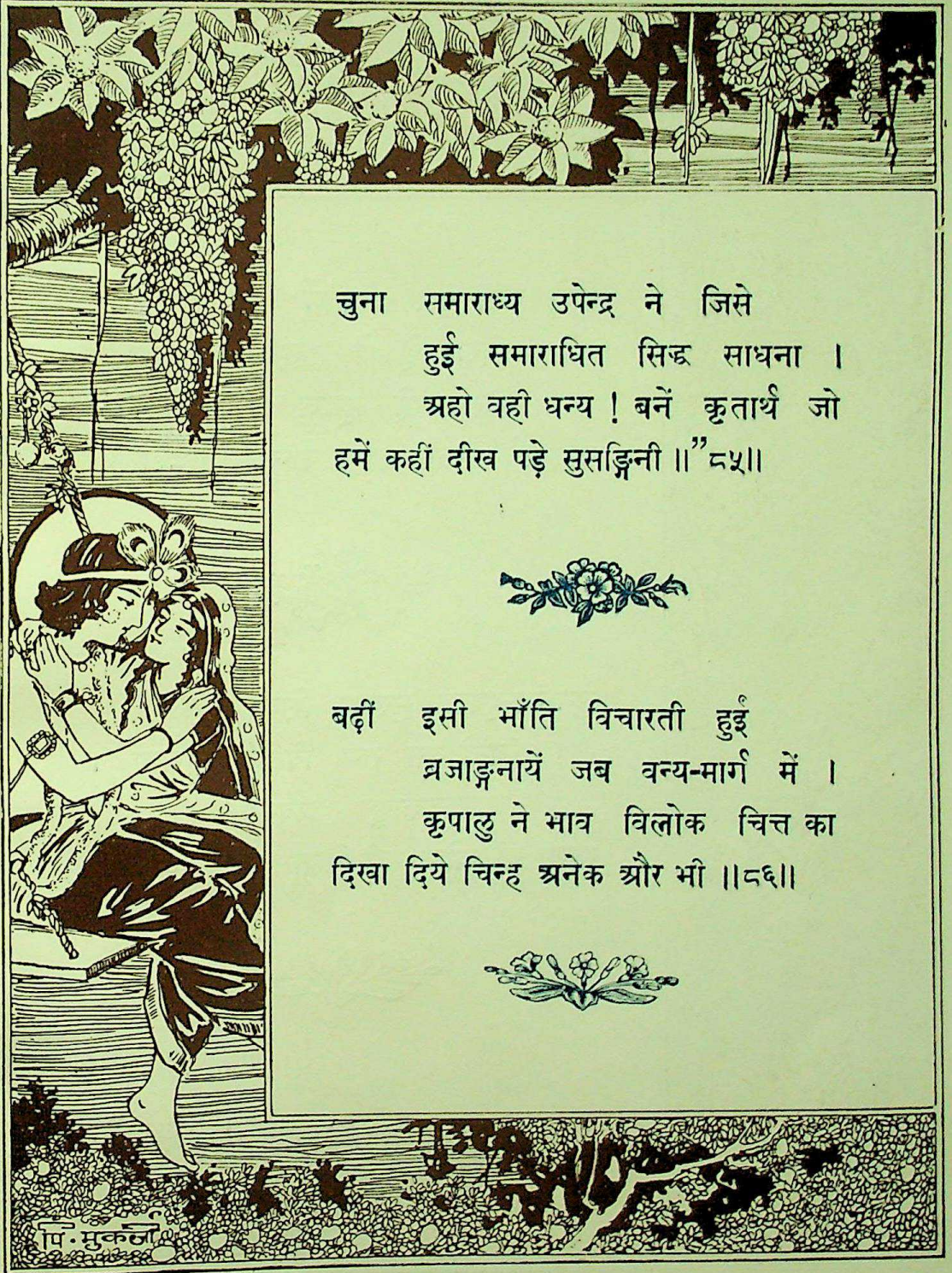
चुना समाराध्य उपेन्द्र ने जिसे
हुई समाराधित सिद्ध साधना ।
अहो वही धन्य ! बनें कृतार्थ जो
हमें कहीं दीख पड़े सुसङ्गिनी ॥"८५॥

बढ़ीं इसी भाँति विचारती हुईं
व्रजाङ्गनायें जब वन्य-मार्ग में ।
कृपालु ने भाव विलोक चित्त का
दिखा दिये चिन्ह अनेक और भी ॥८६॥
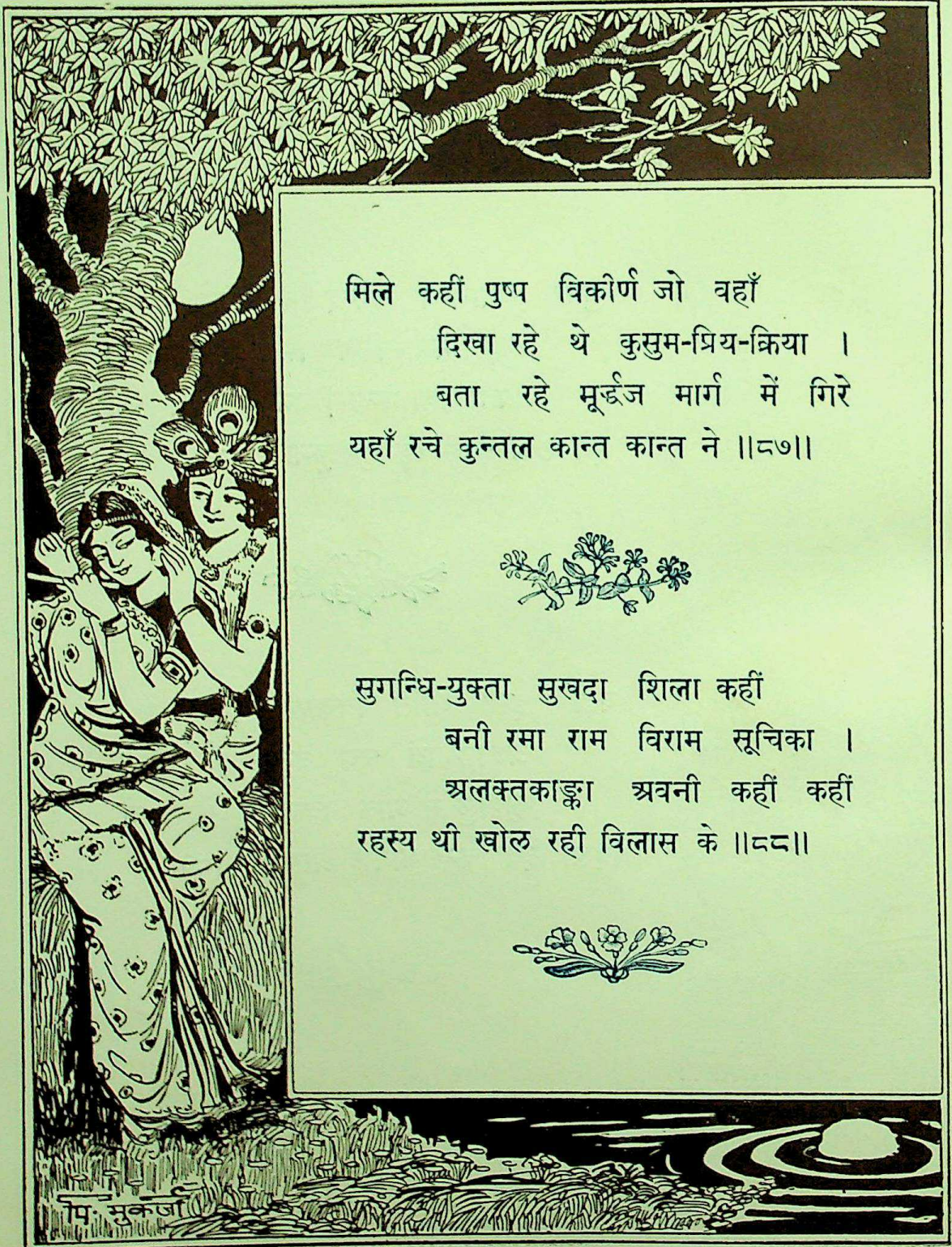
मिले कहीं पुष्प विकीर्ण जो वहाँ
दिखा रहे थे कुसुम-प्रिय-क्रिया ।
बता रहे मूर्द्धज मार्ग में गिरे
यहाँ रचे कुन्तल कान्त कान्त ने ॥८७॥

सुगन्धि-युक्ता सुखदा शिला कहीं
बनी रमा राम विराम सूचिका ।
अलक्तकाङ्का अवनी कहीं कहीं
रहस्य थी खोल रही विलास के ॥८८॥
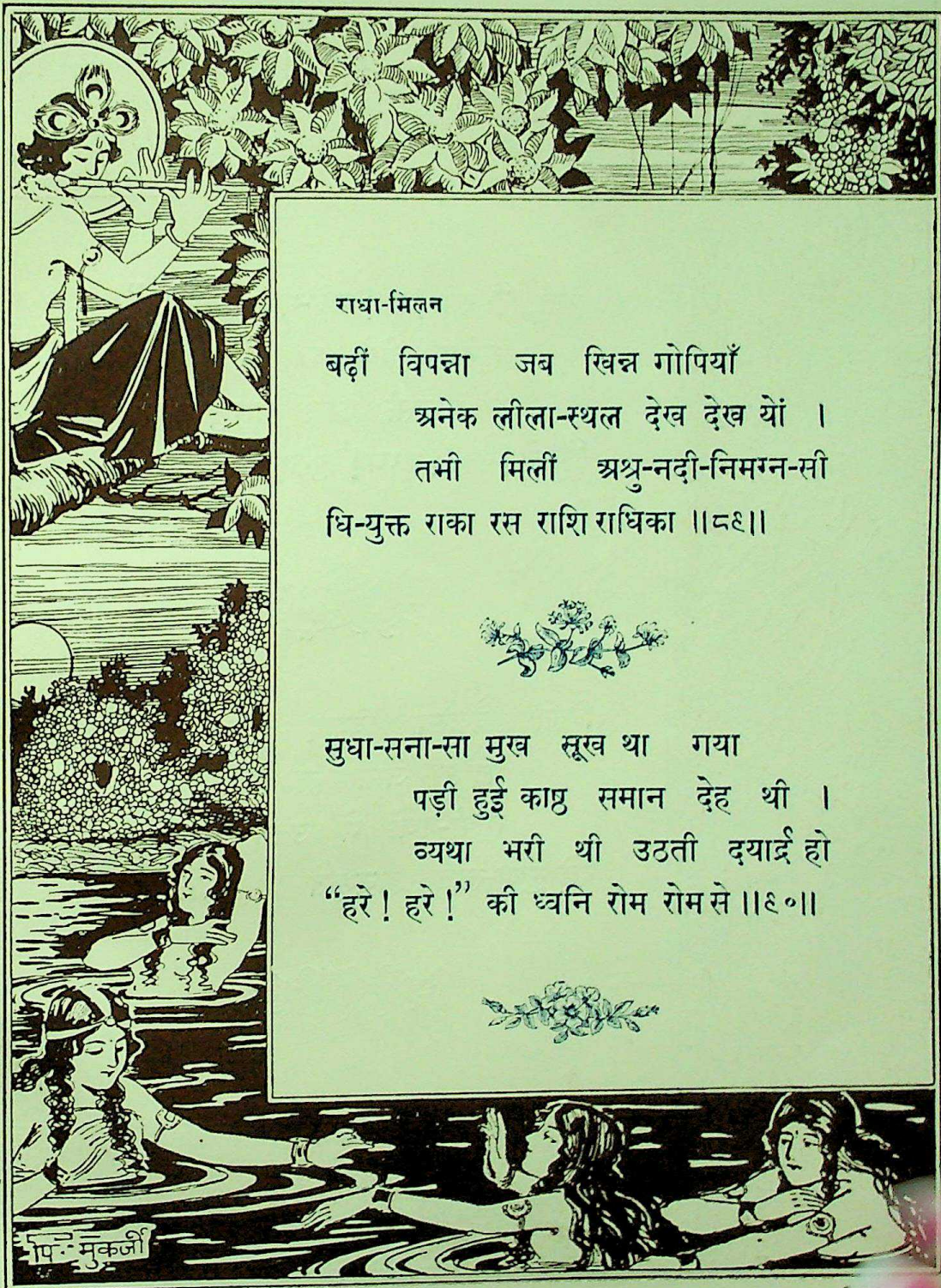
राधा-मिलन

बढ़ीं विपन्ना जब खिन्न गोपियाँ
अनेक लीला-स्थल देख देख यों ।
तभी मिलीं अश्रु-नदी-निमग्न-सी
धि-युक्त राका रस राशि राधिका ॥८९॥

सुधा-सना-सा मुख सूख था गया
पड़ी हुई काष्ठ समान देह थी ।
व्यथा भरी थी उठती दयार्द्र हो
"हरे! हरे!" की ध्वनि रोम रोम से ॥९०॥
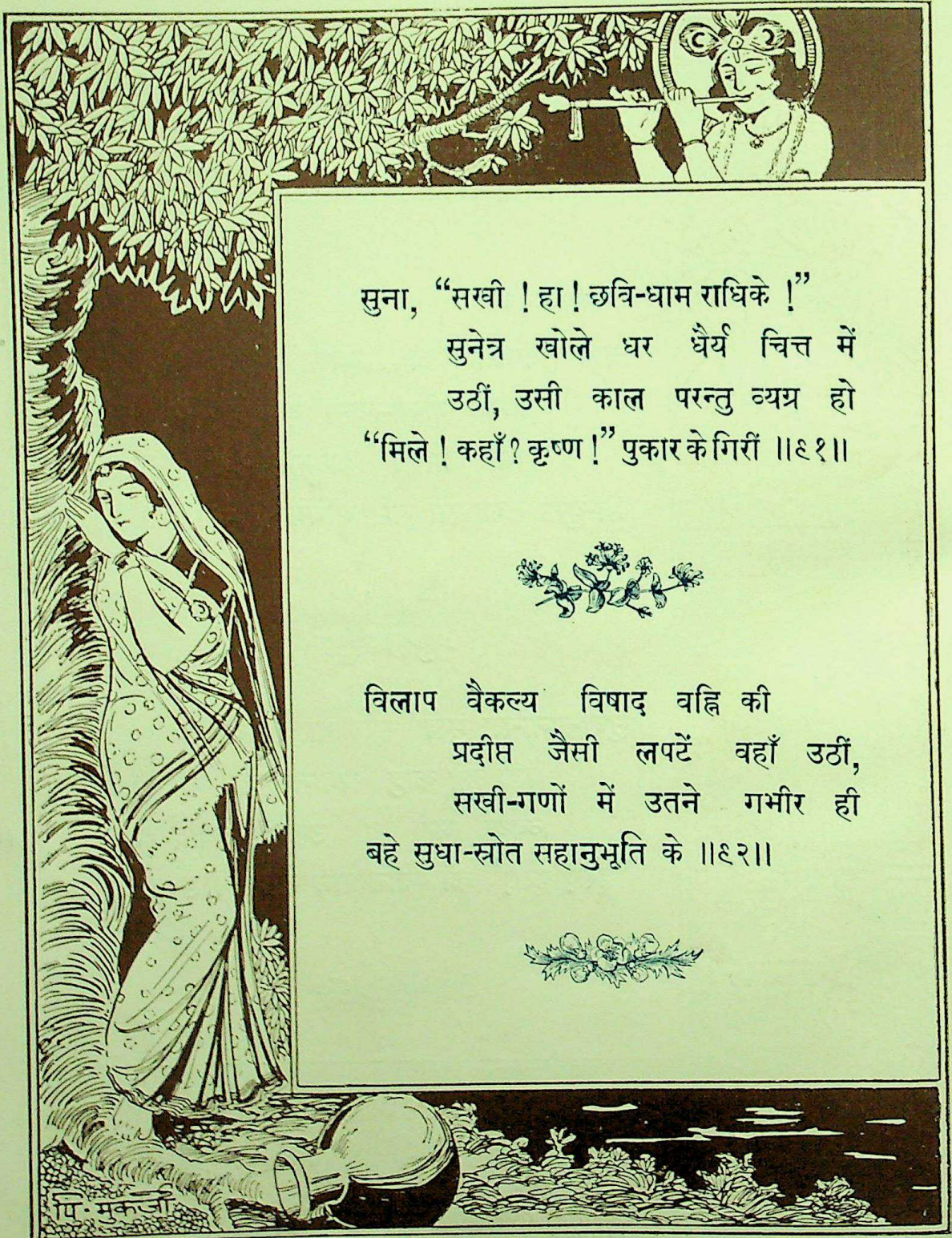
सुना, “सखी ! हा ! छवि-धाम राधिके !”
सुनेत्र खोले धर धैर्य चित्त में
उठीं, उसी काल परन्तु व्यग्र हो
“मिले ! कहाँ ? कृष्ण !” पुकार के गिरीं ॥९१॥

विलाप वैकल्य विषाद वह्नि की
प्रदीप्त जैसी लपटें वहाँ उठीं,
सखी-गणों में उतने गभीर ही
बहे सुधा-स्रोत सहानुभूति के ॥९२॥
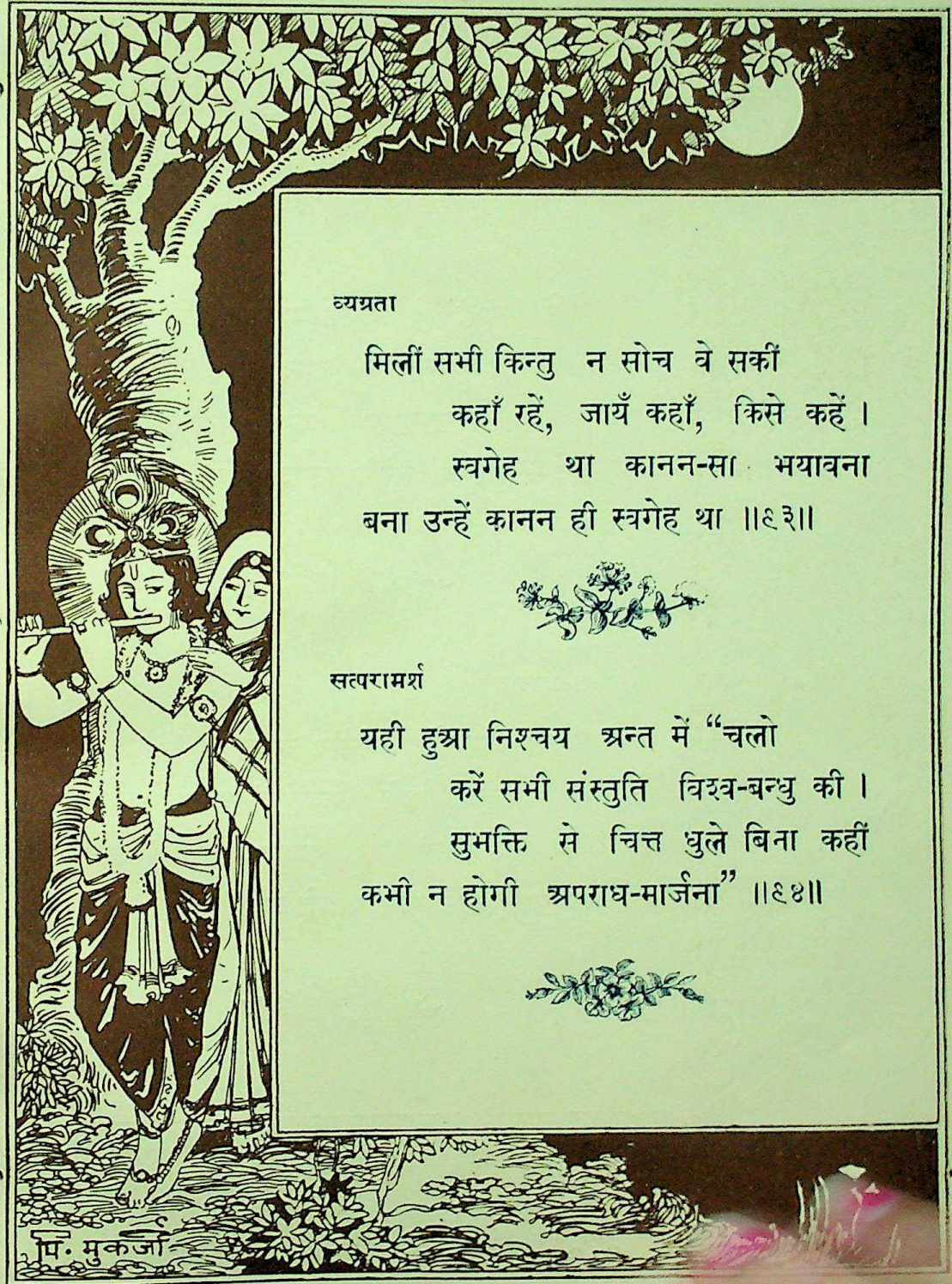
व्यग्रता

मिलीं सभी किन्तु न सोच वे सकीं
कहाँ रहें, जायँ कहाँ, किसे कहें ।
स्वगेह था कानन-सा भयावना
बना उन्हें कानन ही स्वगेह था ॥९३॥

सत्परामर्श

यही हुआ निश्चय अन्त में "चलो
करें सभी संस्तुति विश्व-बन्धु की ।
सुभक्ति से चित्त धुले बिना कहीं
कभी न होगी अपराध-मार्जना" ॥९४॥
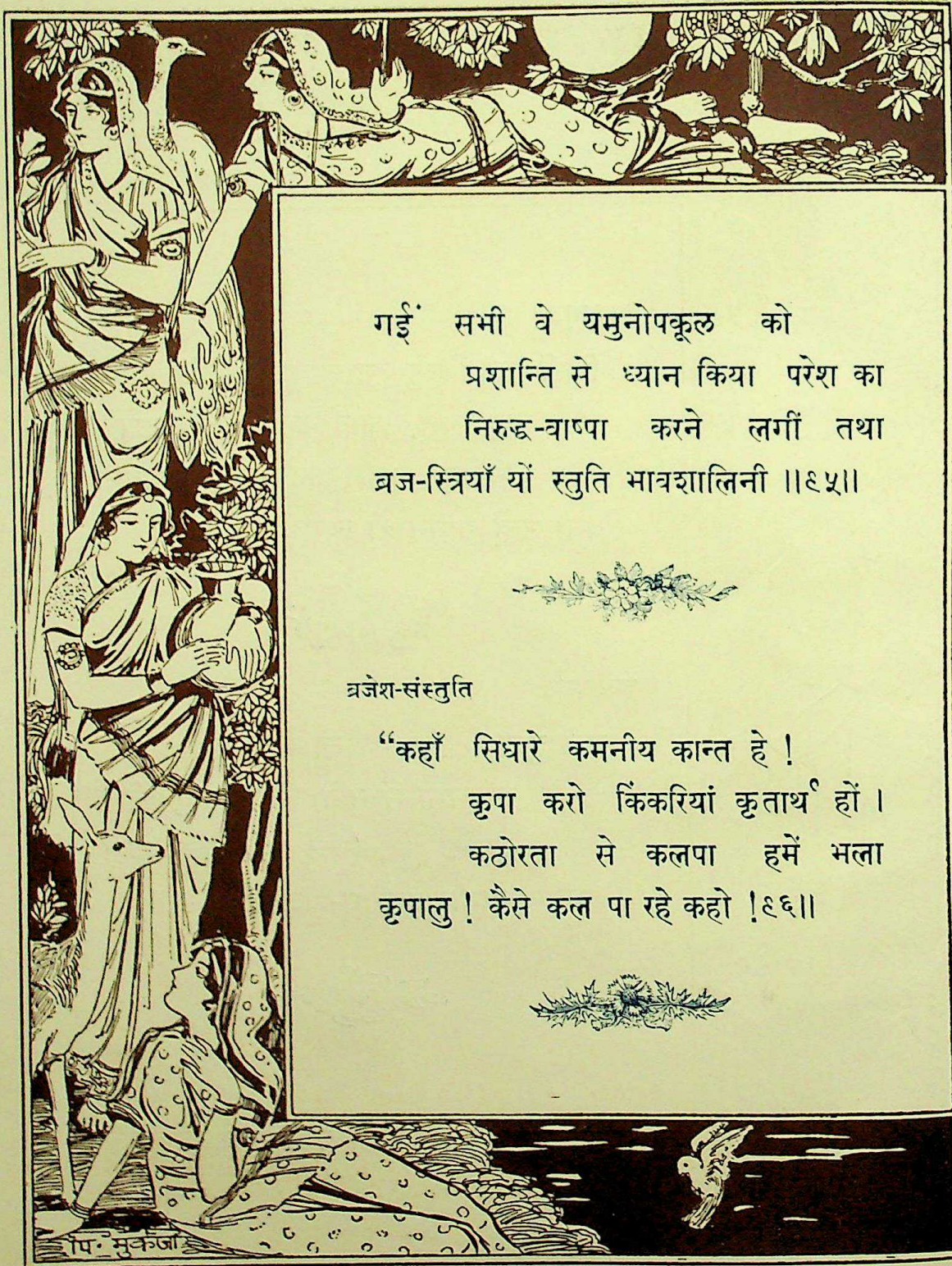
गईं सभी वे यमुनोपकूल को
प्रशान्ति से ध्यान किया परेश का
निरुद्ध-वाष्पा करने लगीं तथा
व्रज-स्त्रियाँ यों स्तुति भावशालिनी ।।९५।।

व्रजेश-संस्तुति

"कहाँ सिधारे कमनीय कान्त हे !
कृपा करो किंकरियां कृतार्थ हों ।
कठोरता से कलपा हमें भला
कृपालु ! कैसे कल पा रहे कहो !९६।।

कृष्ण-आविर्भाव
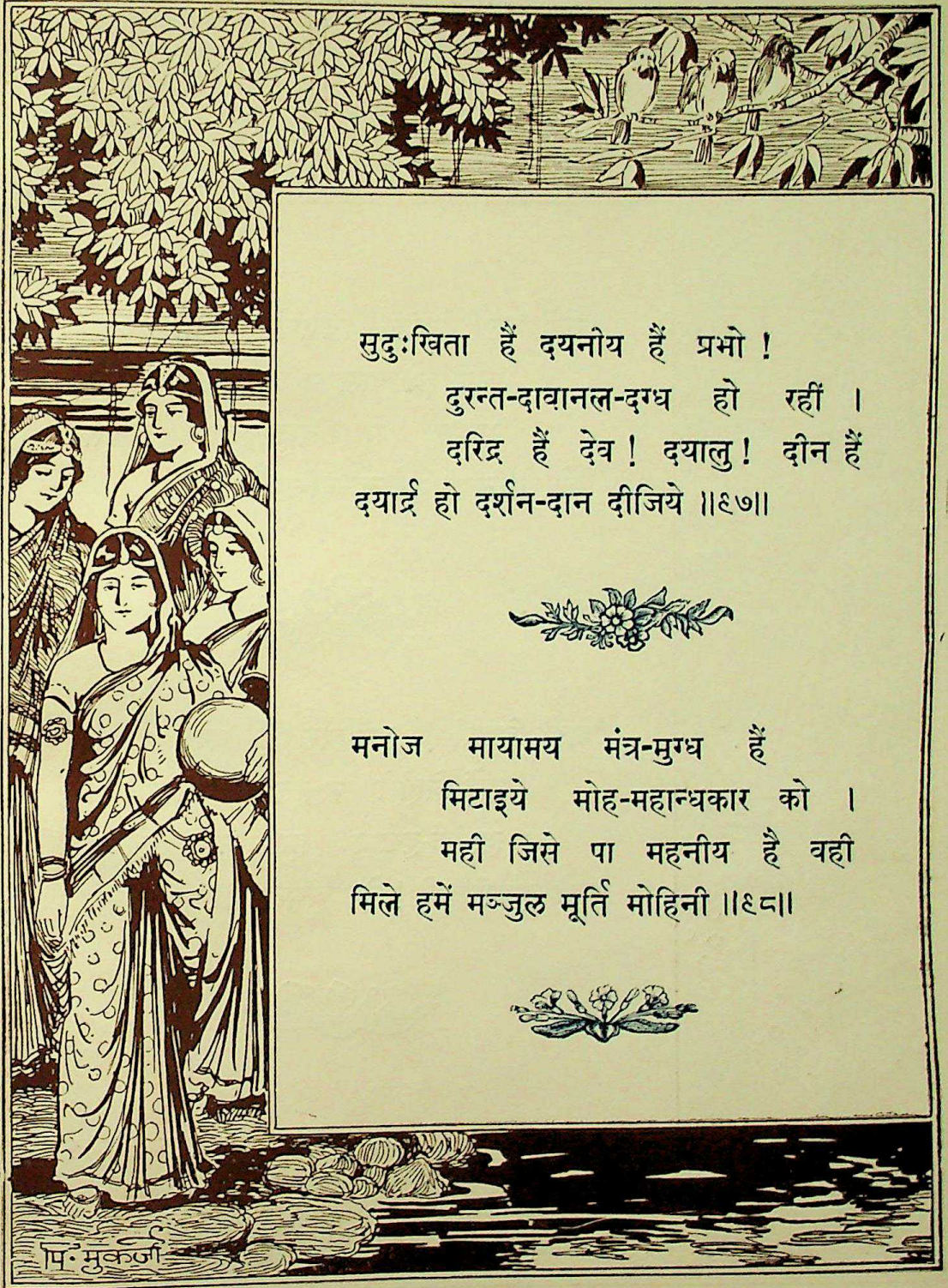
सुदुःखिता हैं दयनीय हैं प्रभो !
दुरन्त-दावानल-दग्ध हो रहीं ।
दरिद्र हैं देव ! दयालु ! दीन हैं
दयार्द्र हो दर्शन-दान दीजिये ॥९७॥

मनोज मायामय मंत्र-मुग्ध हैं
मिटाइये मोह-महान्धकार को ।
मही जिसे पा महनीय है वही
मिले हमें मञ्जुल मूर्ति मोहिनी ॥९८॥
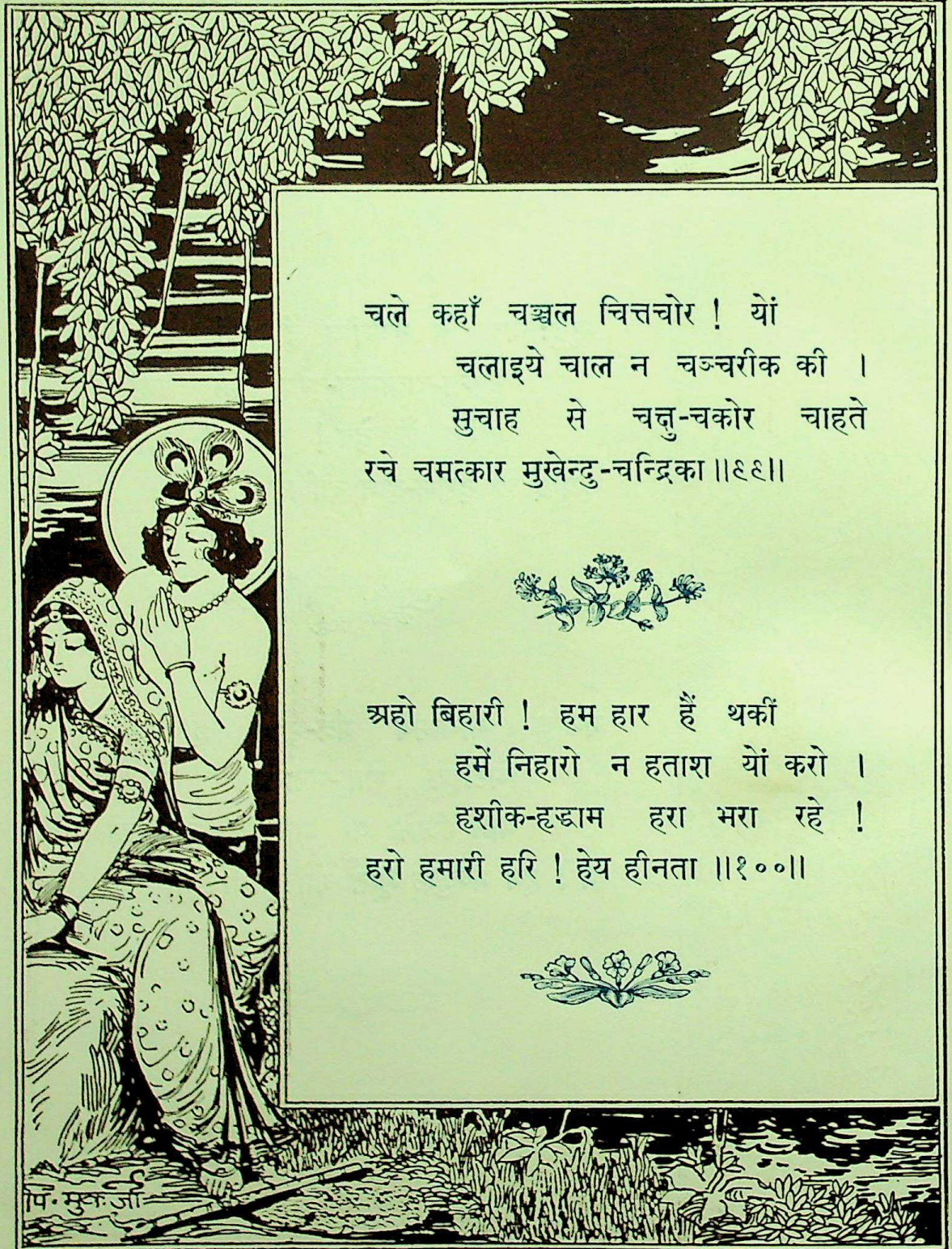
चले कहाँ चञ्चल चित्तचोर ! यों
चलाइये चाल न चञ्चरीक की ।
सुचाह से चक्षु-चकोर चाहते
रचे चमत्कार मुखेन्दु-चन्द्रिका ।।९९।।
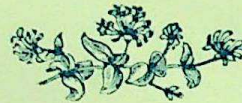
अहो बिहारी ! हम हार हैं थकीं
हमें निहारो न हताश यों करो ।
हृशीक-हृद्धाम हरा भरा रहे !
हरो हमारी हरि ! हेय हीनता ।।१००।।
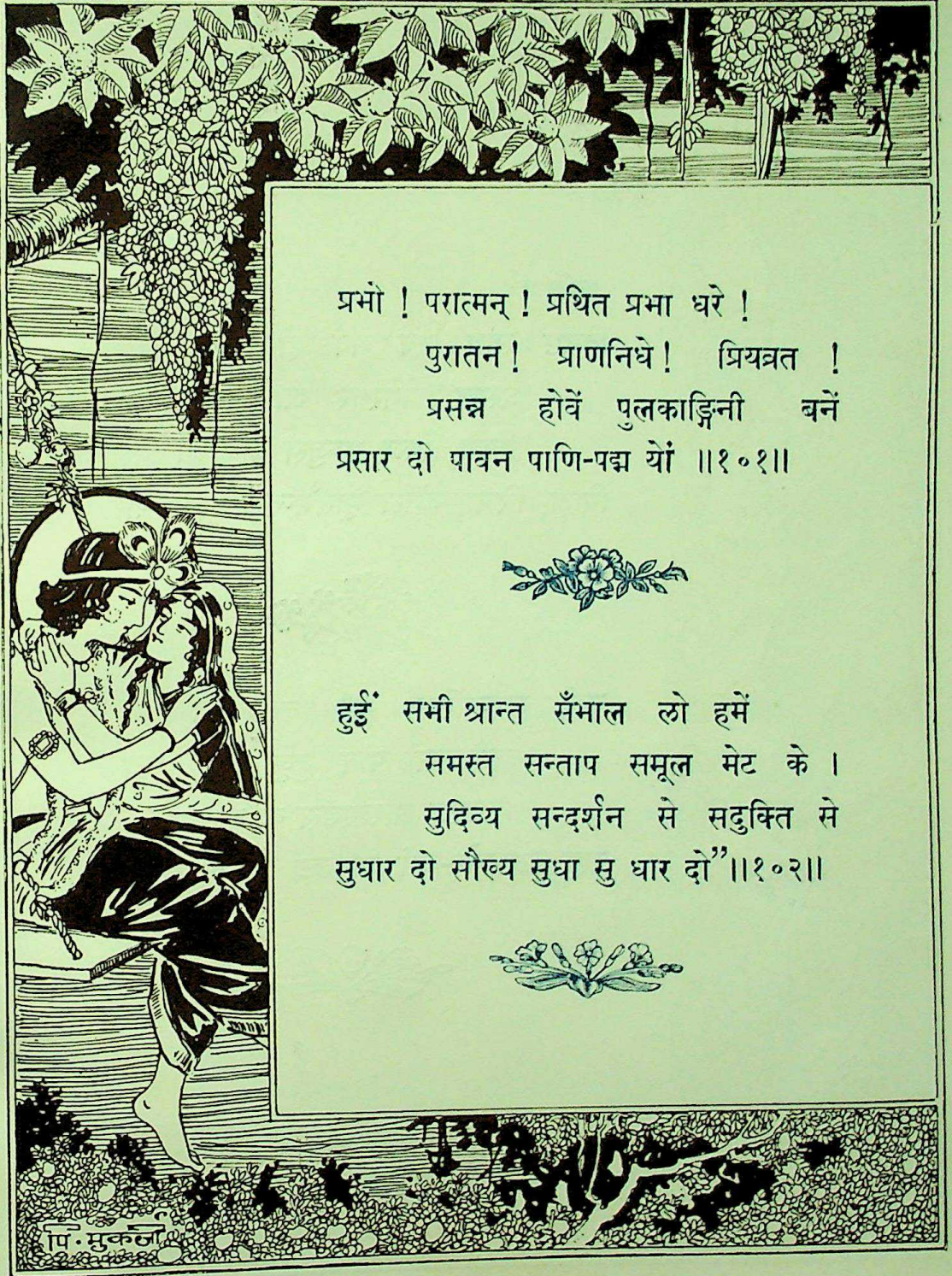
प्रभो ! परात्मन् ! प्रथित प्रभा धरे !
पुरातन ! प्राणनिधे ! प्रियव्रत !
प्रसन्न होवें पुलकाङ्गिनी बनें
प्रसार दो पावन पाणि-पद्म यों ॥१०१॥

हुई सभी श्रान्त सँभाल लो हमें
समस्त सन्ताप समूल मेट के ।
सुदिव्य सन्दर्शन से सदुक्ति से
सुधार दो सौख्य सुधा सु धार दो" ॥१०२॥
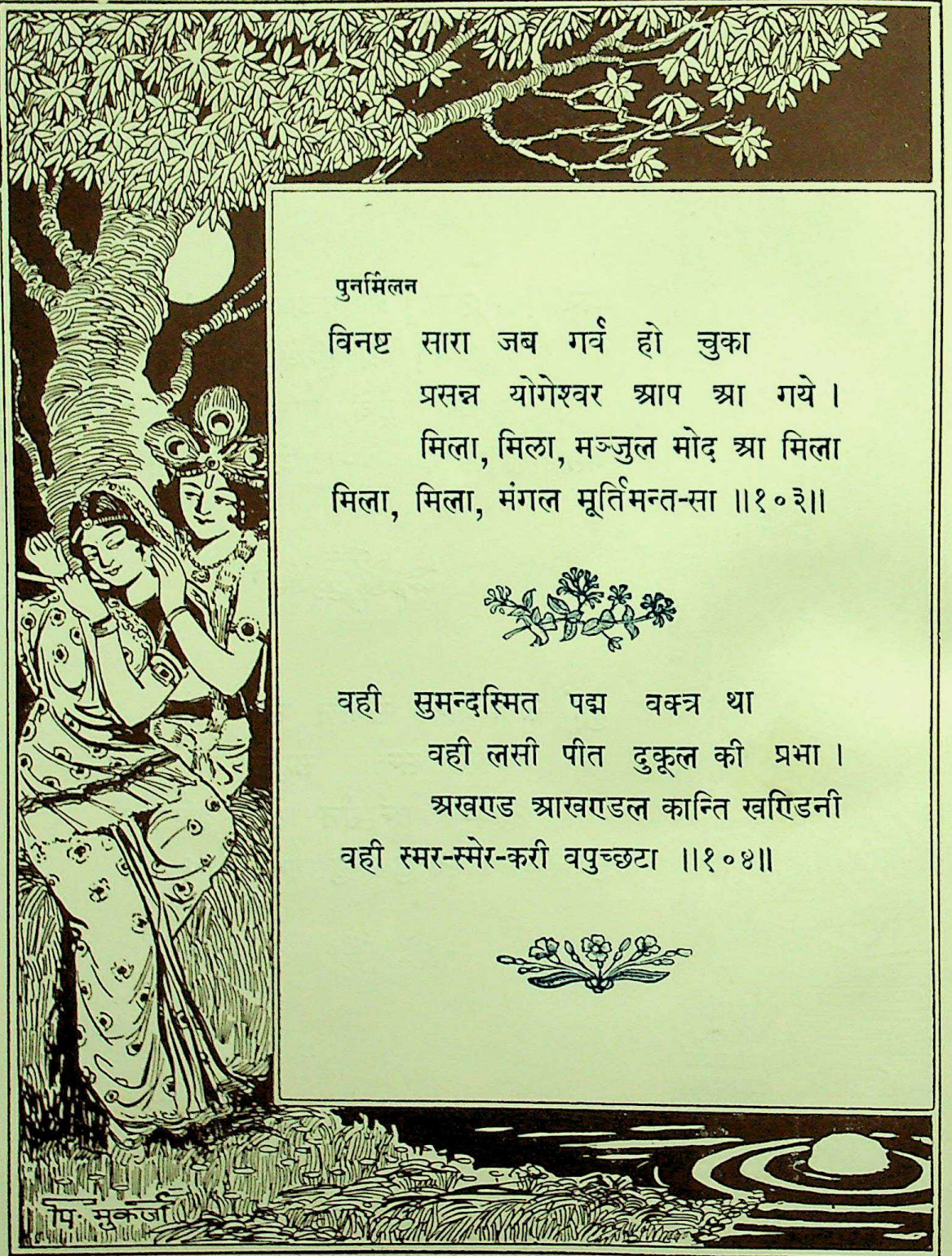
पुनर्मिलन

विनष्ट सारा जब गर्व हो चुका
प्रसन्न योगेश्वर आप आ गये।
मिला, मिला, मञ्जुल मोद आ मिला
मिला, मिला, मंगल मूर्तिमन्त-सा ॥१०३॥

वही सुमन्दस्मित पद्म वक्त्र था
वही लसी पीत दुकूल की प्रभा।
अखण्ड आखण्डल कान्ति खण्डिनी
वही स्मर-स्मेर-करी वपुच्छटा ॥१०४॥
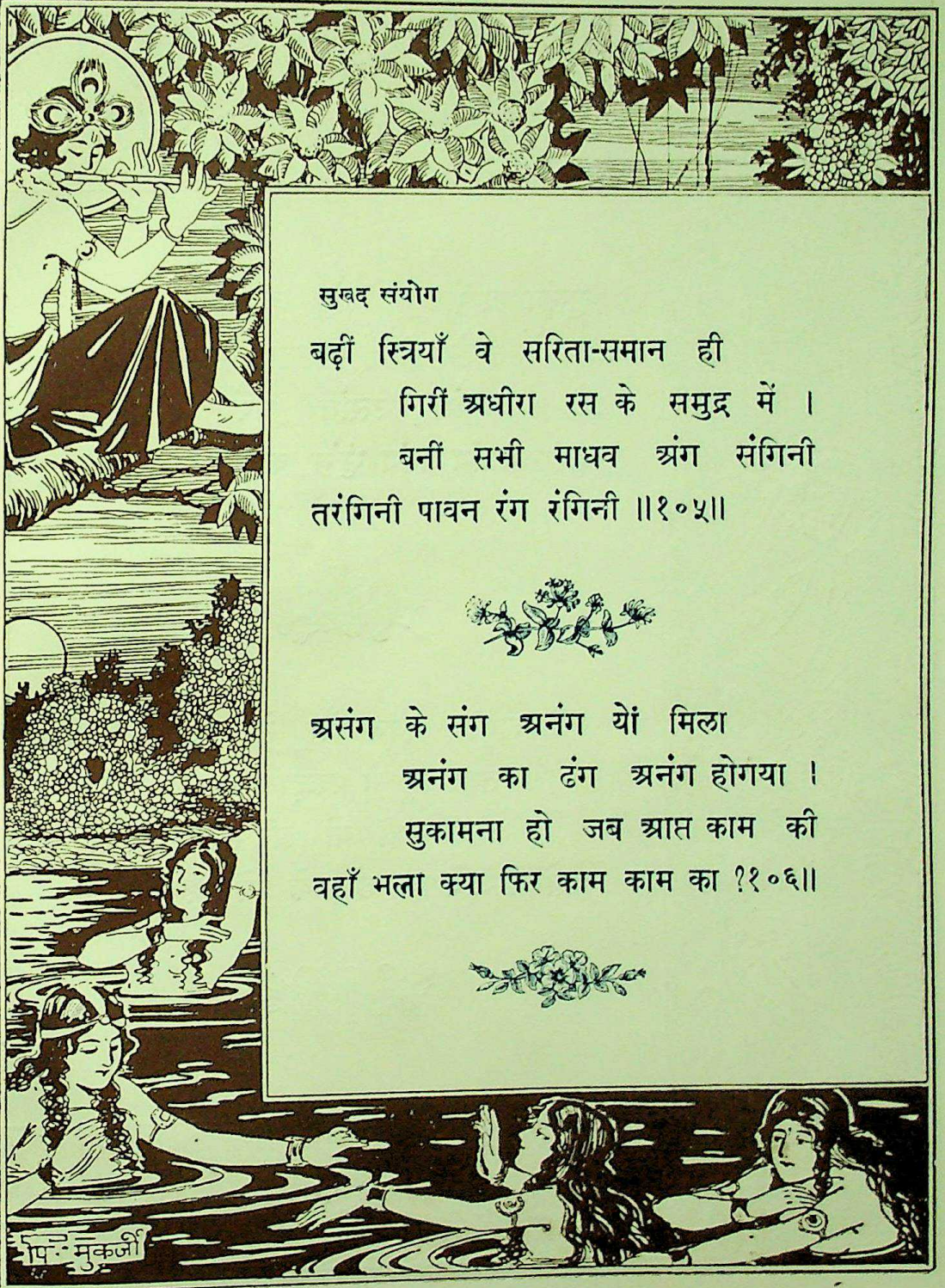
सुखद संयोग

बढ़ीं स्त्रियाँ वे सरिता-समान ही
गिरीं अधीरा रस के समुद्र में ।
बनीं सभी माधव अंग संगिनी
तरंगिनी पावन रंग रंगिनी ॥१०५॥

असंग के संग अनंग यों मिला
अनंग का ढंग अनंग होगया ।
सुकामना हो जब आप्त काम की
वहाँ भला क्या फिर काम काम का ?१०६॥
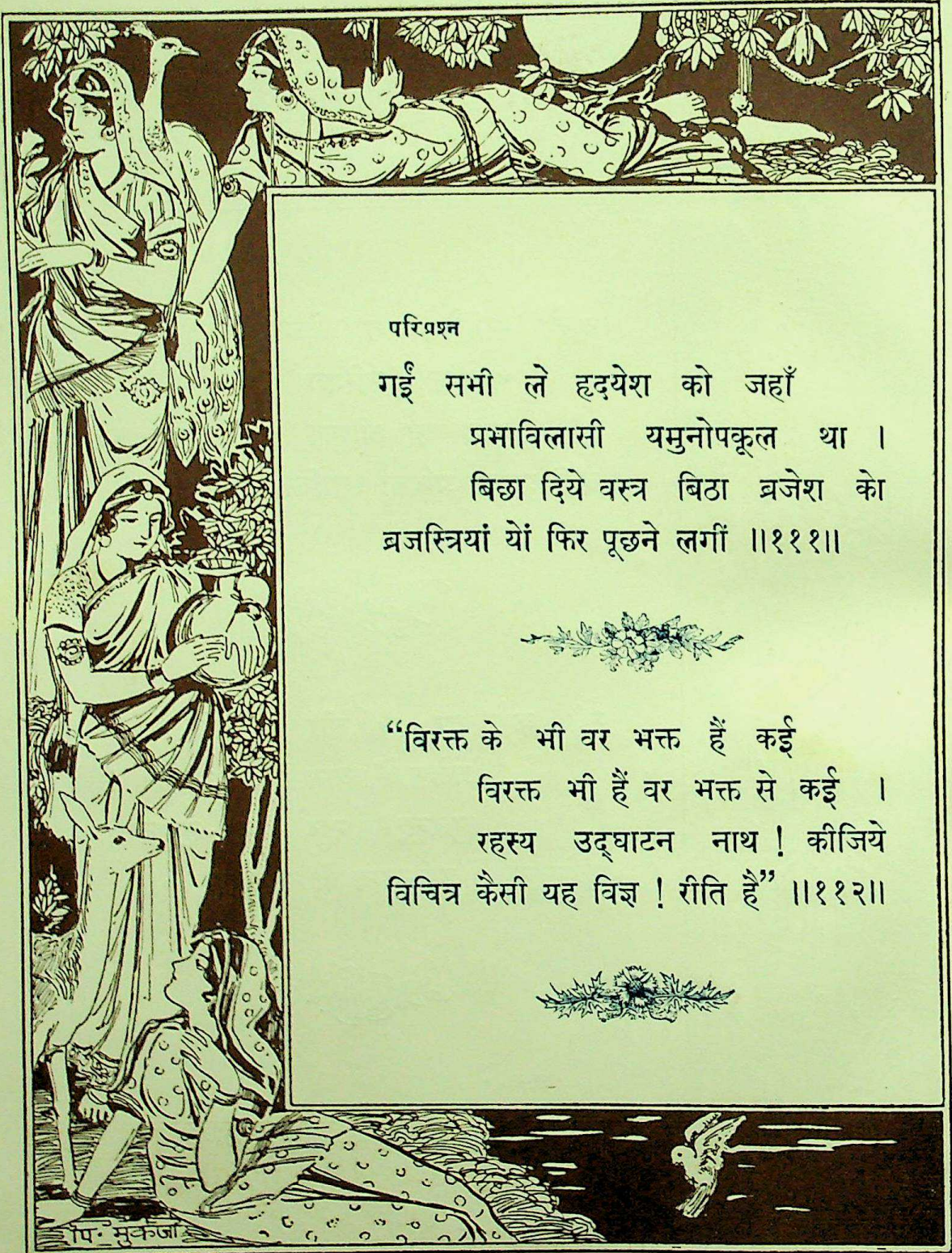
परिप्रश्न

गईं सभी ले हृदयेश को जहाँ
प्रभाविलासी यमुनोपकूल था ।
बिछा दिये वस्त्र बिठा ब्रजेश को
ब्रजस्त्रियां यों फिर पूछने लगीं ॥१११॥

"विरक्त के भी वर भक्त हैं कई
विरक्त भी हैं वर भक्त से कई ।
रहस्य उद्घाटन नाथ ! कीजिये
विचित्र कैसी यह विज्ञ ! रीति है" ॥११२॥
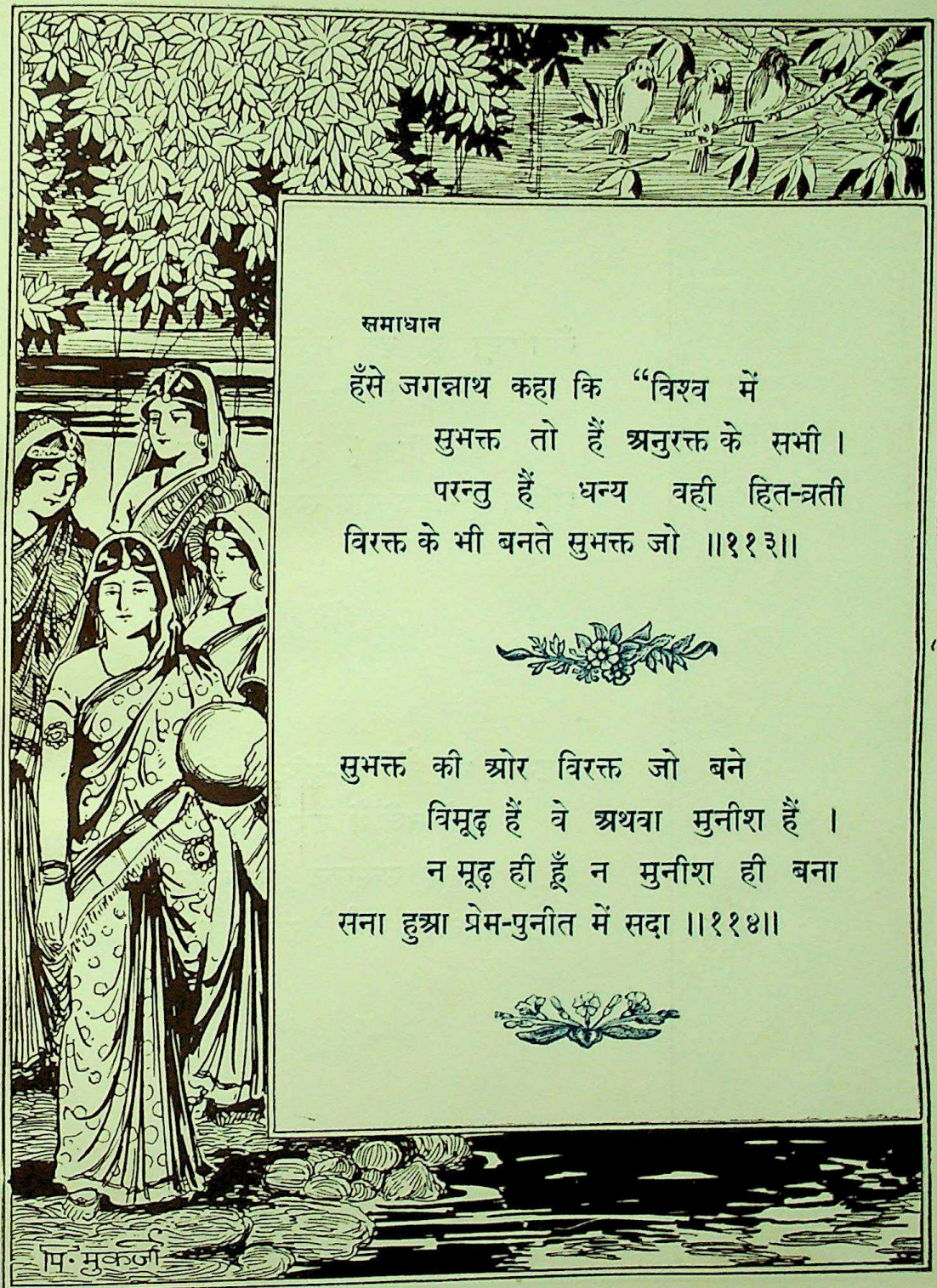
समाधान

हँसे जगन्नाथ कहा कि "विश्व में
सुभक्त तो हैं अनुरक्त के सभी।
परन्तु हैं धन्य वही हित-व्रती
विरक्त के भी बनते सुभक्त जो ॥११३॥

सुभक्त की ओर विरक्त जो बने
विमूढ़ हैं वे अथवा मुनीश हैं।
न मूढ़ ही हूँ न मुनीश ही बना
सना हुआ प्रेम-पुनीत में सदा ॥११४॥
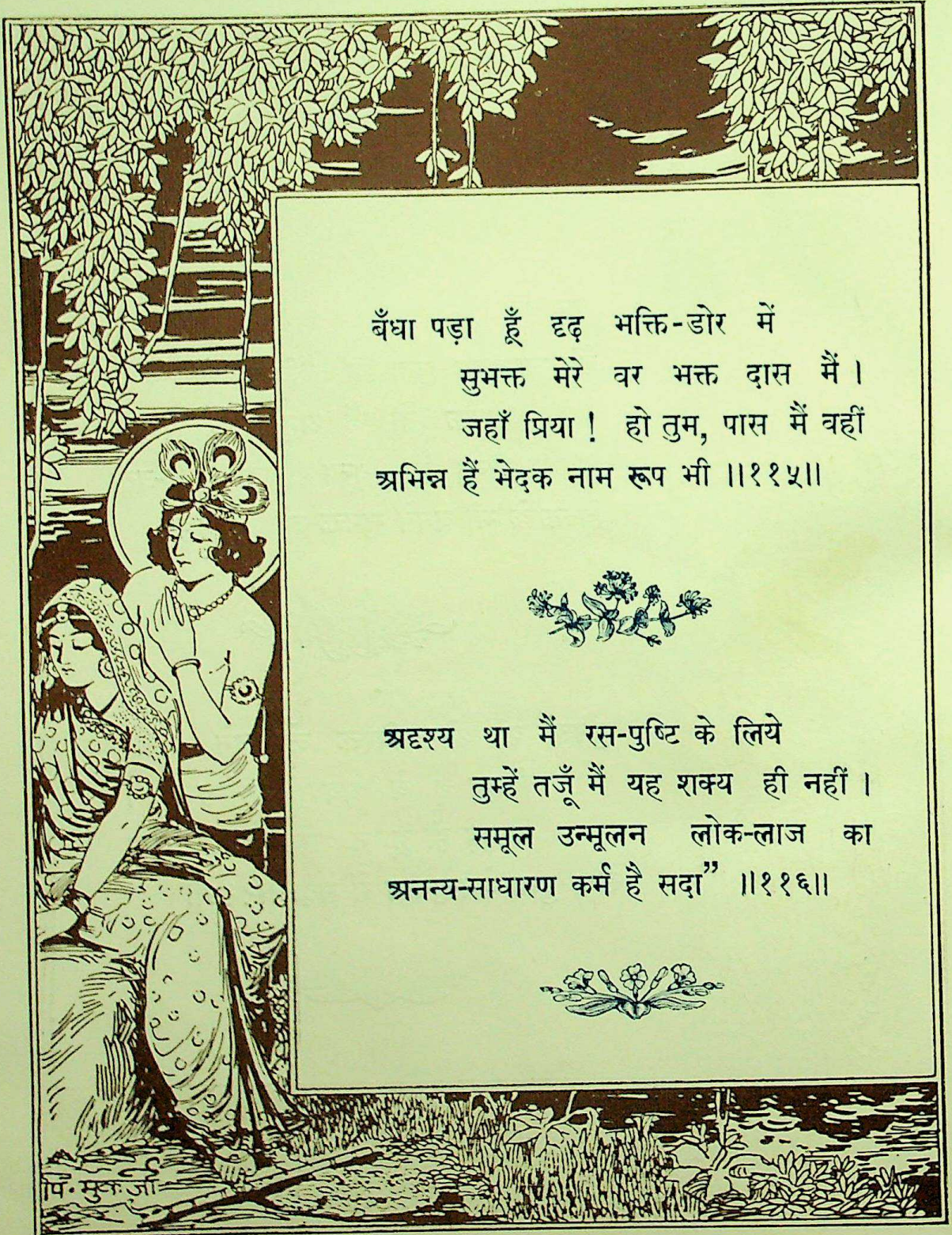
बँधा पड़ा हूँ दृढ़ भक्ति-डोर में
सुभक्त मेरे वर भक्त दास मैं।
जहाँ प्रिया! हो तुम, पास मैं वहीं
अभिन्न हैं भेदक नाम रूप भी ॥११५॥

अदृश्य था मैं रस-पुष्टि के लिये
तुम्हें तजूँ मैं यह शक्य ही नहीं।
समूल उन्मूलन लोक-लाज का
अनन्य-साधारण कर्म है सदा" ॥११६॥
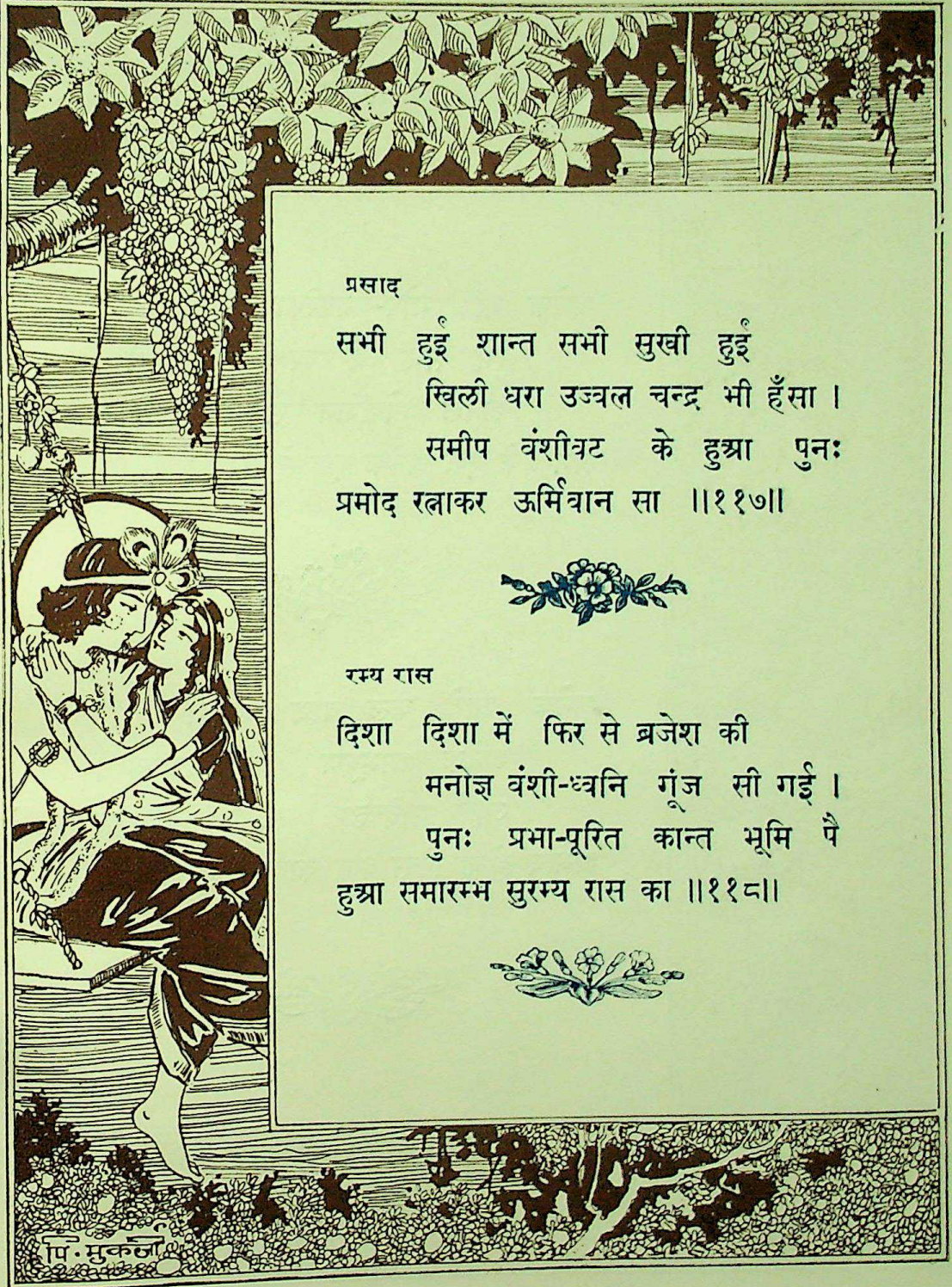
प्रसाद

सभी हुईं शान्त सभी सुखी हुईं
खिली धरा उज्ज्वल चन्द्र भी हँसा ।
समीप वंशीवट के हुआ पुनः
प्रमोद रत्नाकर ऊर्मिवान सा ॥११७॥

रम्य रास

दिशा दिशा में फिर से ब्रजेश की
मनोज्ञ वंशी-ध्वनि गूंज सी गई ।
पुनः प्रभा-पूरित कान्त भूमि पै
हुआ समारम्भ सुरम्य रास का ॥११८॥
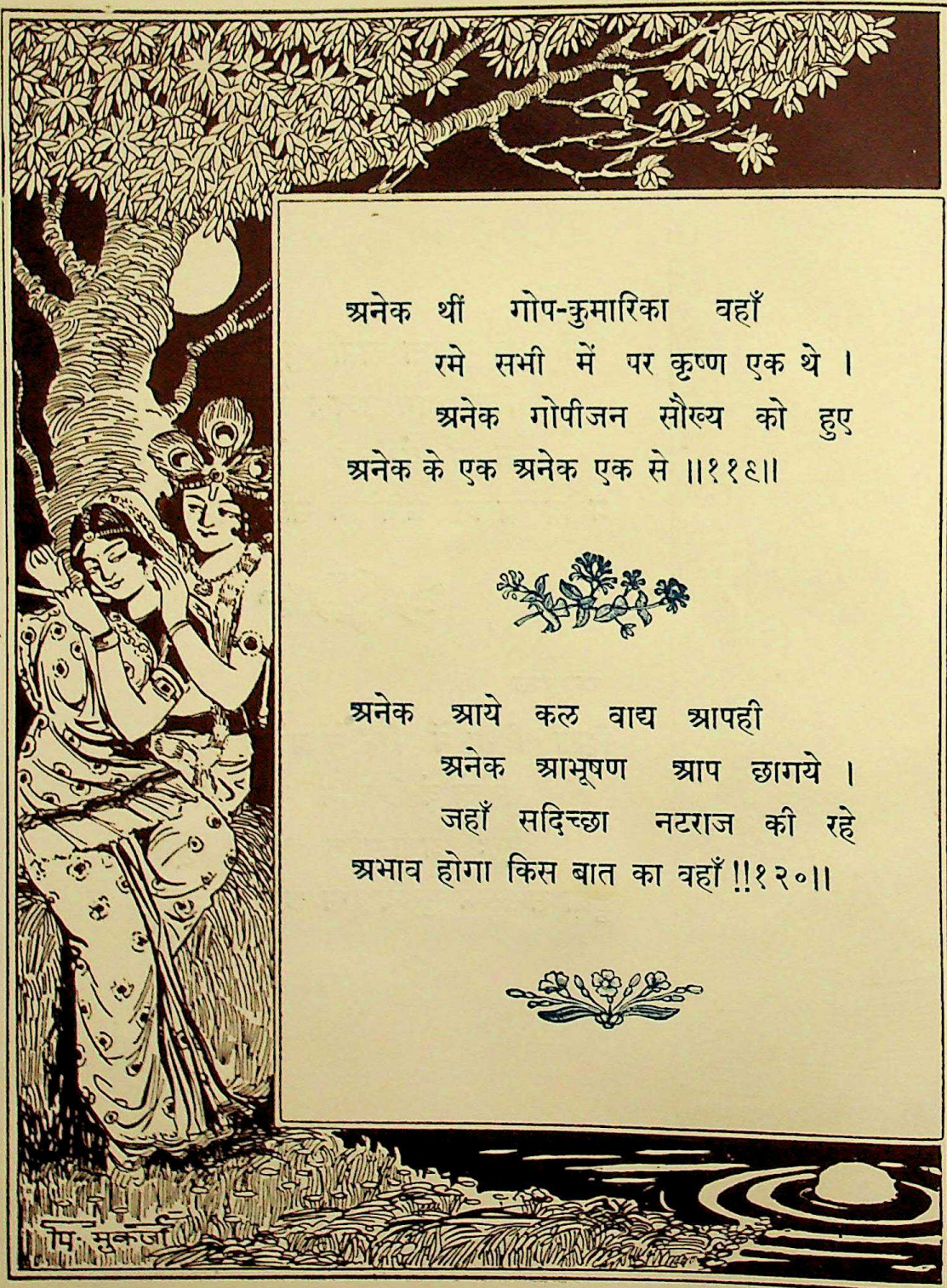
अनेक थीं गोप-कुमारिका वहाँ
रमे सभी में पर कृष्ण एक थे ।
अनेक गोपीजन सौख्य को हुए
अनेक के एक अनेक एक से ॥११९॥

अनेक आये कल वाद्य आपही
अनेक आभूषण आप छागये ।
जहाँ सदिच्छा नटराज की रहे
अभाव होगा किस बात का वहाँ !!१२०॥

रम्य रास
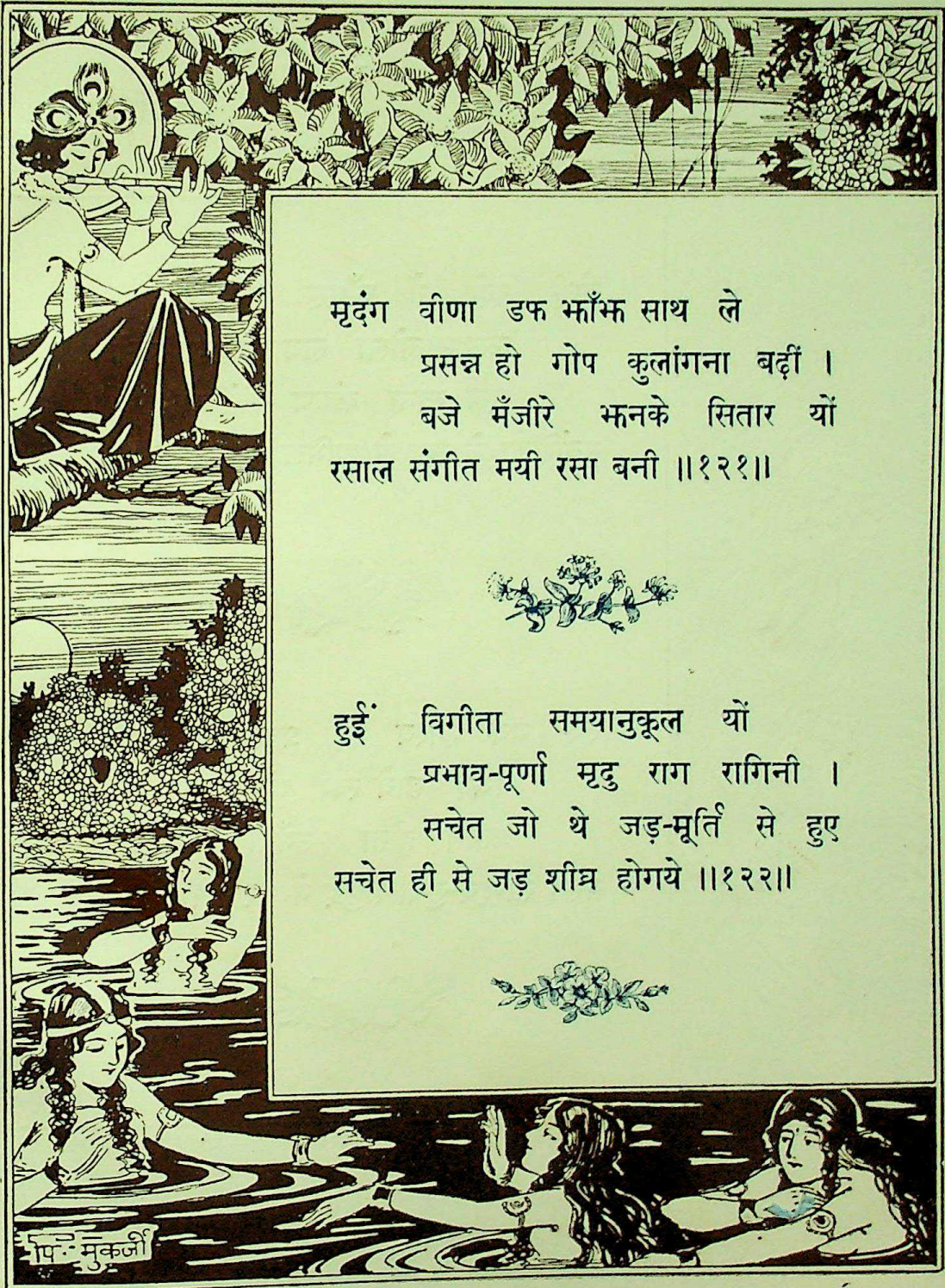
मृदंग वीणा डफ झाँझ साथ ले
प्रसन्न हो गोप कुलांगना बढ़ीं ।
बजे मँजीरे झनके सितार यों
रसाल संगीत मयी रसा बनी ।।१२१।।

हुईं विगीता समयानुकूल यों
प्रभाव-पूर्णा मृदु राग रागिनी ।
सचेत जो थे जड़-मूर्ति से हुए
सचेत ही से जड़ शीघ्र होगये ।।१२२।।

बँधी पदों में घुँघरू सुहावनी
ललाम लीला लय आलया लसीं।
सुख स्वना कंकण किंकिणी बनीं
सुवंशिका के स्वर से अभिन्न थीं ॥१२३॥

रचे गये लास्य कई प्रकार के
प्रभेद छाये स्वर और ताल के।
प्रतीत होता उमँगी उमंग से
तरंग सौन्दर्य-सुधा-समुद्र में ॥१२४॥
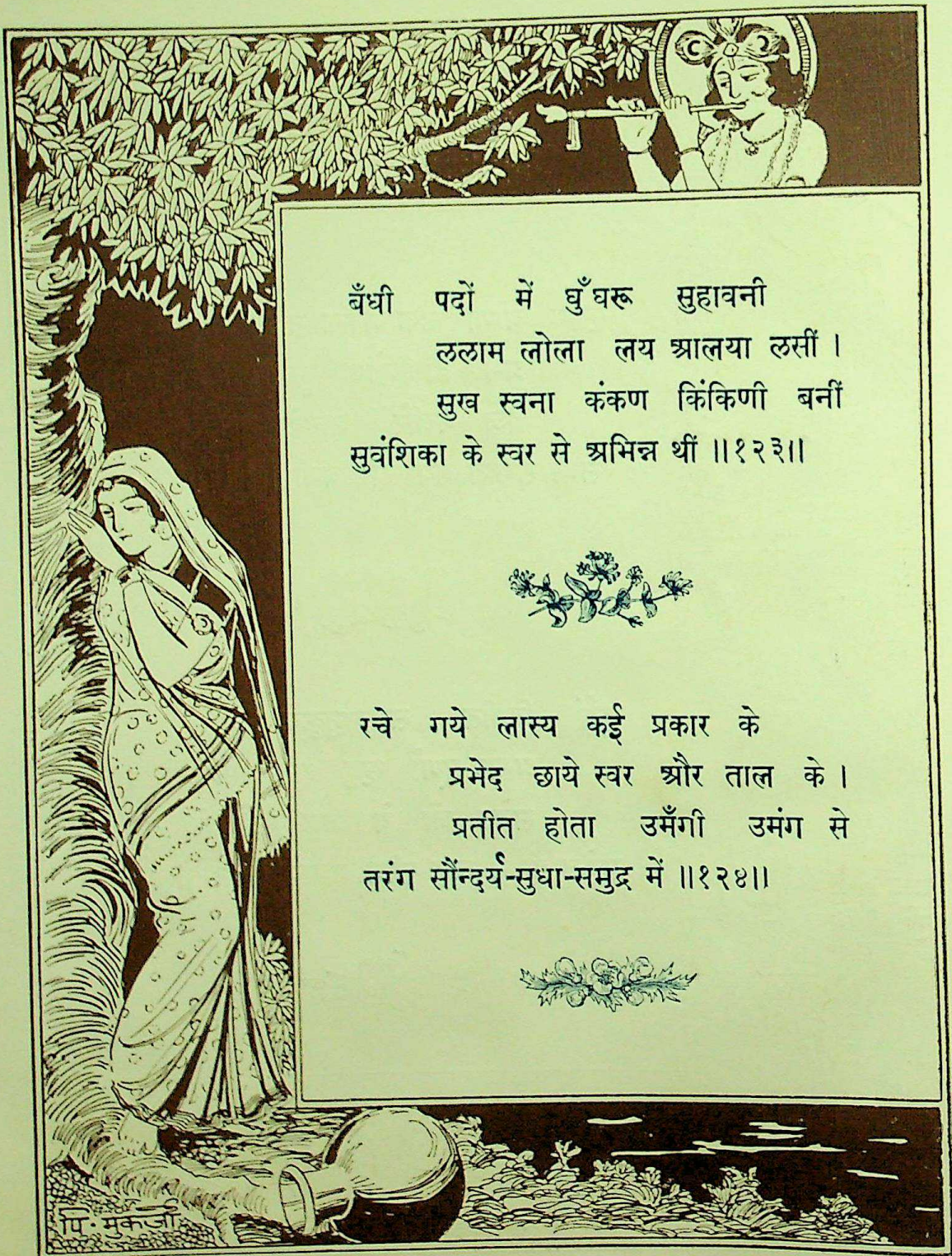
कटाक्ष थे संस्मित थे सुहास थे
अपूर्व थी हस्त पदादि की क्रिया ।
सुभावसन्दर्शन देख देख के
मनोज भी मूढ़ बना विलास में ॥१२५॥

दिव्य दर्शन

घिरी विमानावलि से नभस्थली
अनेक आये सुरवृन्द यों वहाँ ।
विलोक के रास अनूप ईश का
असंख्य पुष्पावृत पुण्य भूमि की ॥१२६॥
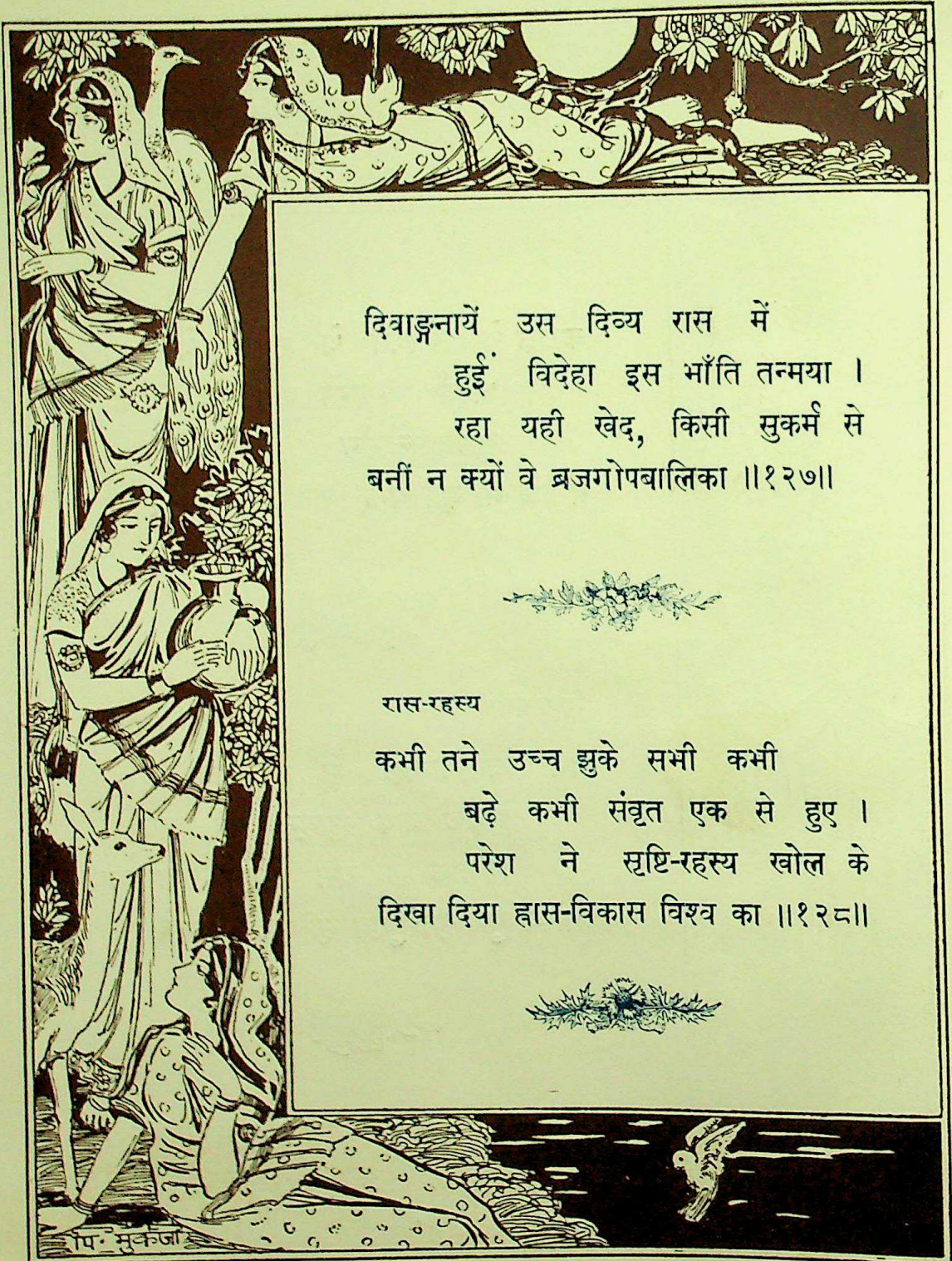
दिवाङ्गनायें उस दिव्य रास में
हुईं विदेहा इस भाँति तन्मया ।
रहा यही खेद, किसी सुकर्म से
बनीं न क्यों वे ब्रजगोपबालिका ॥१२७॥

रास-रहस्य

कभी तने उच्च झुके सभी कभी
बढ़े कभी संवृत एक से हुए ।
परेश ने सृष्टि-रहस्य खोल के
दिखा दिया ह्रास-विकास विश्व का ॥१२८॥
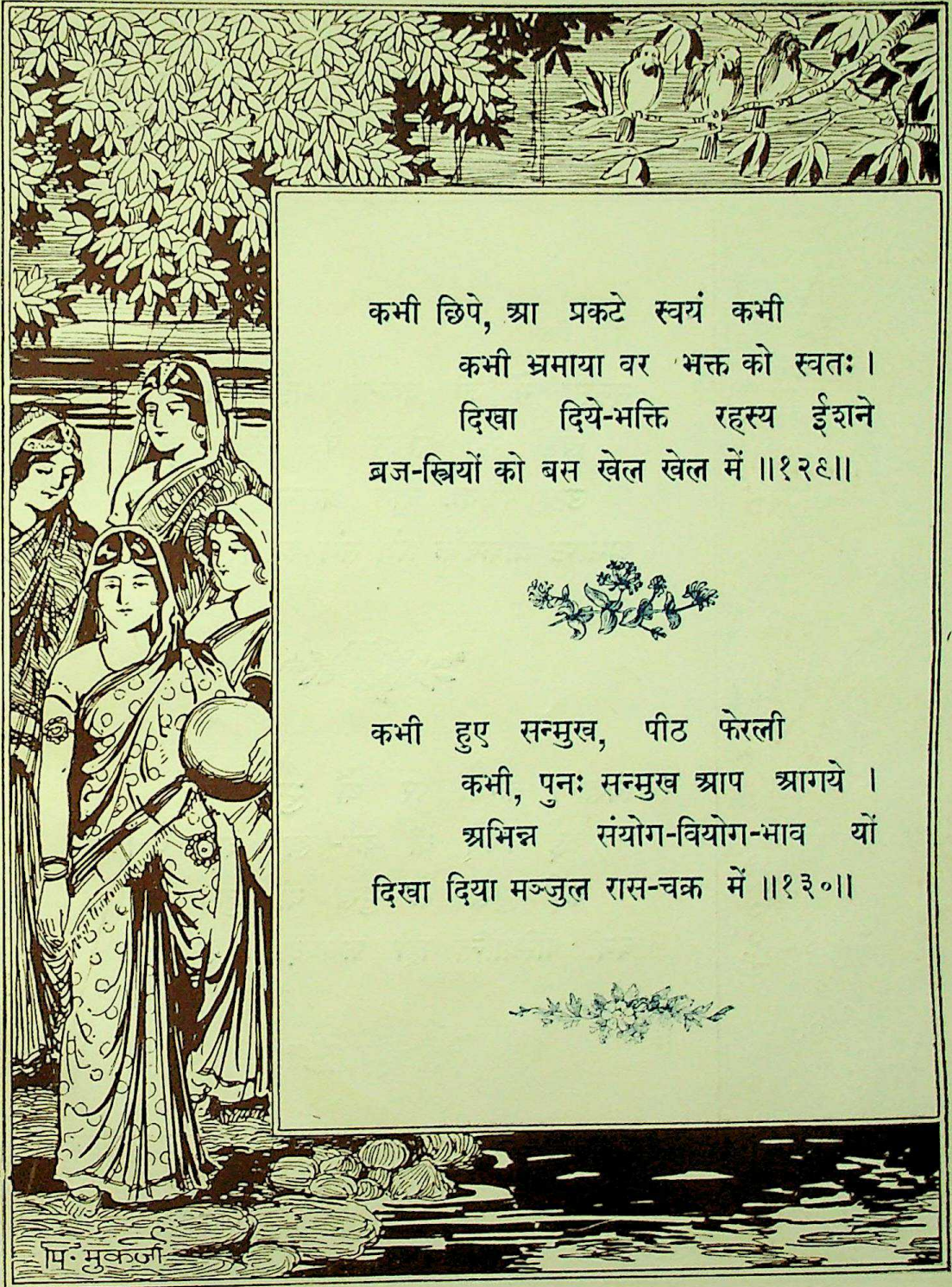
कभी छिपे, आ प्रकटे स्वयं कभी
कभी भ्रमाया वर भक्त को स्वतः।
दिखा दिये-भक्ति रहस्य ईशने
ब्रज-स्त्रियों को बस खेल खेल में ॥१२९॥

कभी हुए सन्मुख, पीठ फेरली
कभी, पुनः सन्मुख आप आगये।
अभिन्न संयोग-वियोग-भाव यों
दिखा दिया मञ्जुल रास-चक्र में ॥१३०॥
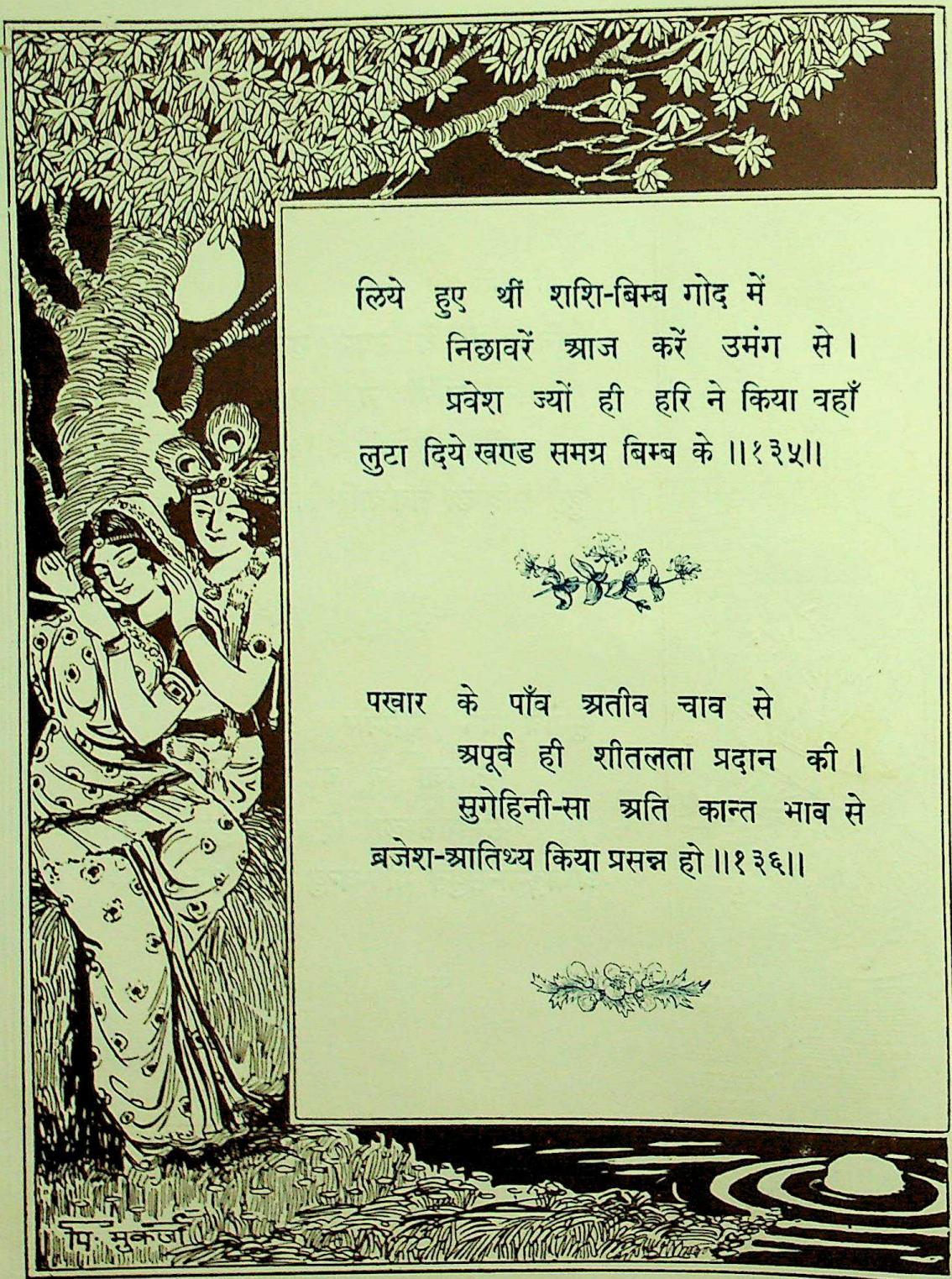
लिये हुए थीं शशि-बिम्ब गोद में
निछावरें आज करें उमंग से।
प्रवेश ज्यों ही हरि ने किया वहाँ
लुटा दिये खण्ड समग्र बिम्ब के ॥१३५॥

पखार के पाँव अतीव चाव से
अपूर्व ही शीतलता प्रदान की।
सुगेहिनी-सा अति कान्त भाव से
ब्रजेश-आतिथ्य किया प्रसन्न हो ॥१३६॥
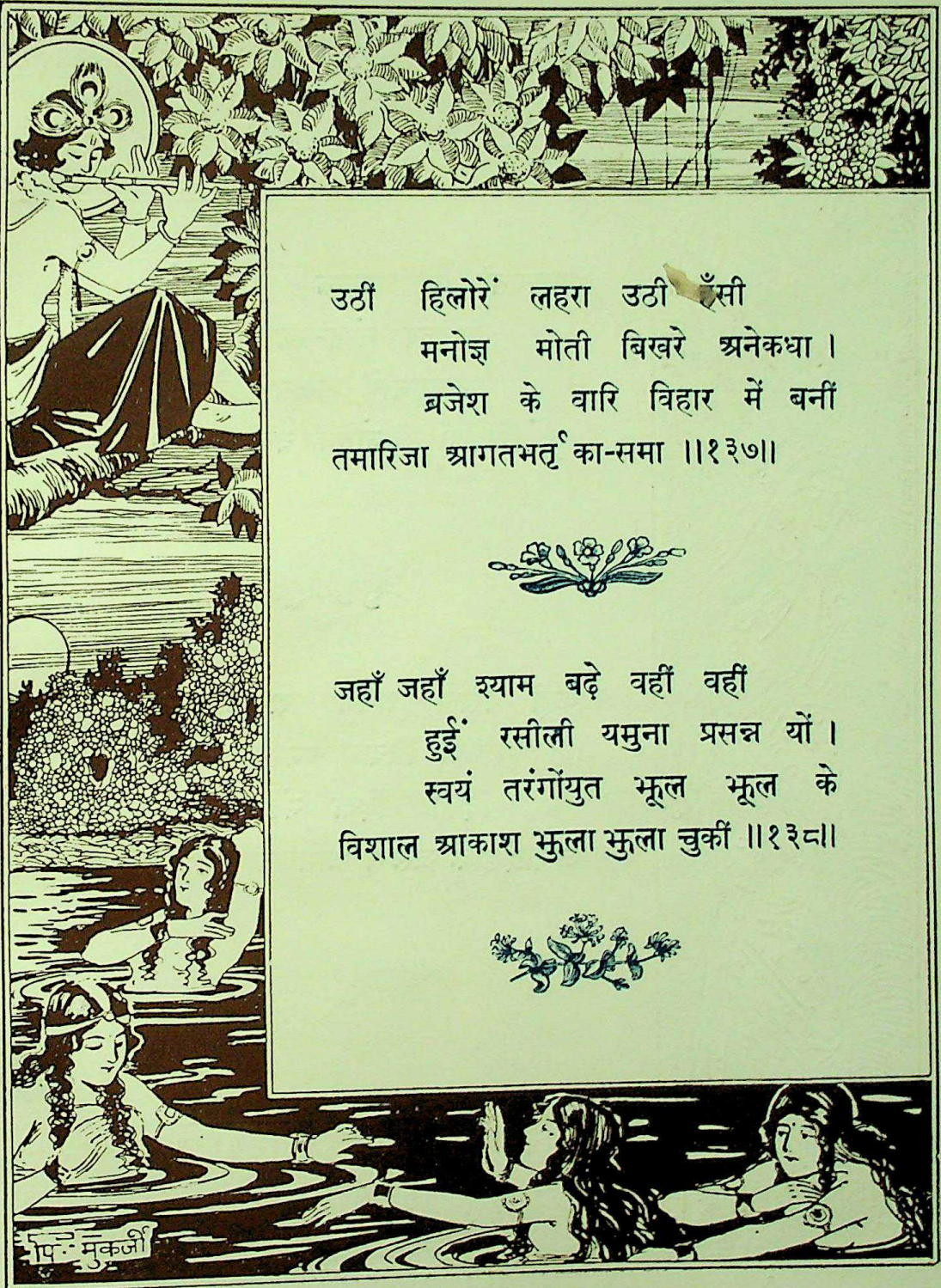
उठीं हिलोरें लहरा उठी हँसी
मनोज्ञ मोती बिखरे अनेकधा।
ब्रजेश के वारि विहार में बनीं
तमारिजा आगतभर्तृका-समा ॥१३७॥

जहाँ जहाँ श्याम बढ़े वहीं वहीं
हुईं रसीली यमुना प्रसन्न यों।
स्वयं तरंगोंयुत भूल भूल के
विशाल आकाश झुला झुला चुकीं ॥१३८॥
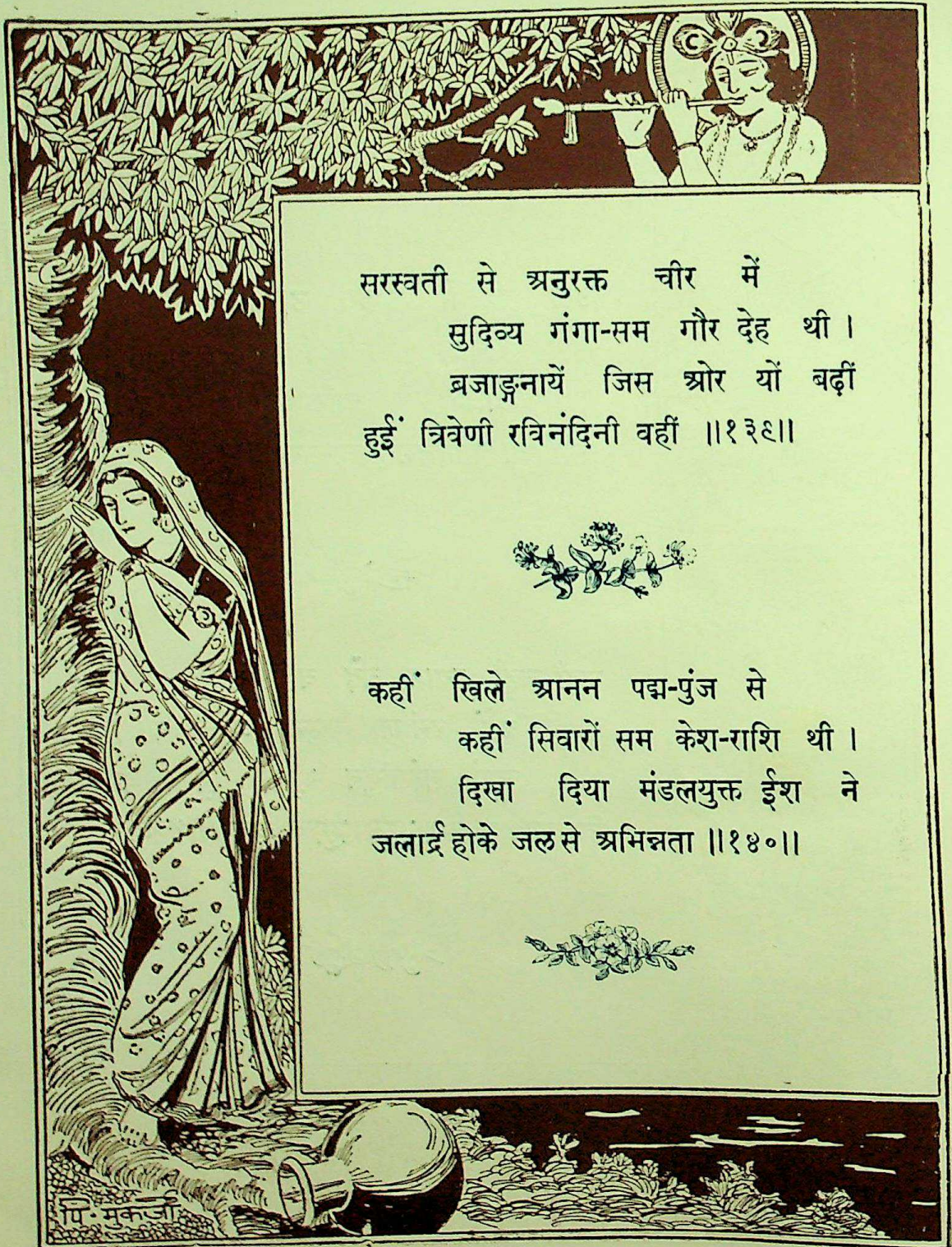
सरस्वती से अनुरक्त चीर में
सुदिव्य गंगा-सम गौर देह थी।
ब्रजाङ्गनायें जिस ओर यों बढ़ीं
हुईं त्रिवेणी रविनंदिनी वहीं ॥१३९॥

कहीं खिले आनन पद्म-पुंज से
कहीं सिवारों सम केश-राशि थी।
दिखा दिया मंडलयुक्त ईश ने
जलार्द्र होके जल से अभिन्नता ॥१४०॥
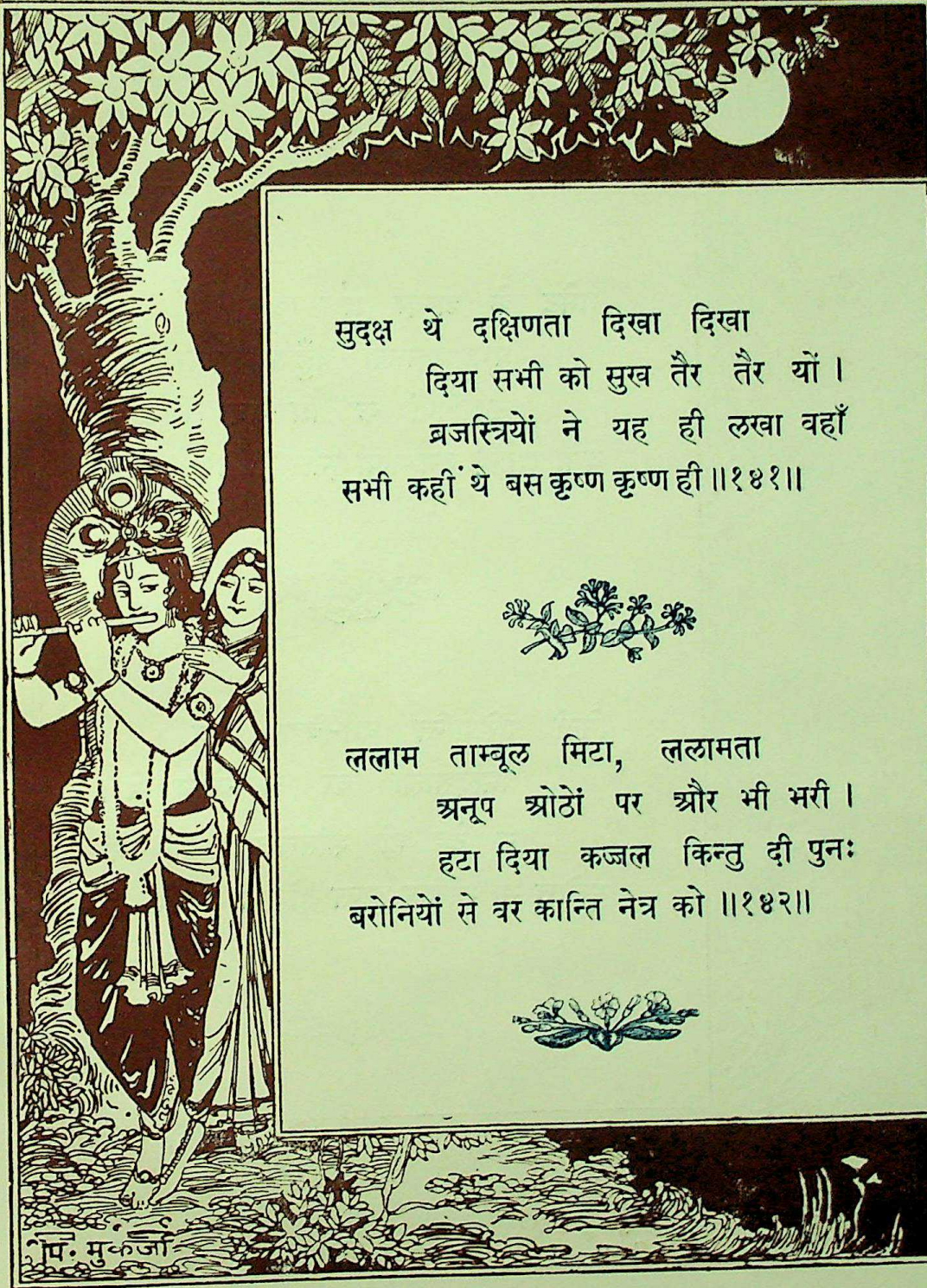
सुदक्ष थे दक्षिणता दिखा दिखा
दिया सभी को सुख तैर तैर यों।
ब्रजस्त्रियों ने यह ही लखा वहाँ
सभी कहीं थे बस कृष्ण कृष्ण ही ॥१४१॥

ललाम ताम्बूल मिटा, ललामता
अनूप ओठों पर और भी भरी।
हटा दिया कज्जल किन्तु दी पुनः
बरोनियों से वर कान्ति नेत्र को ॥१४२॥
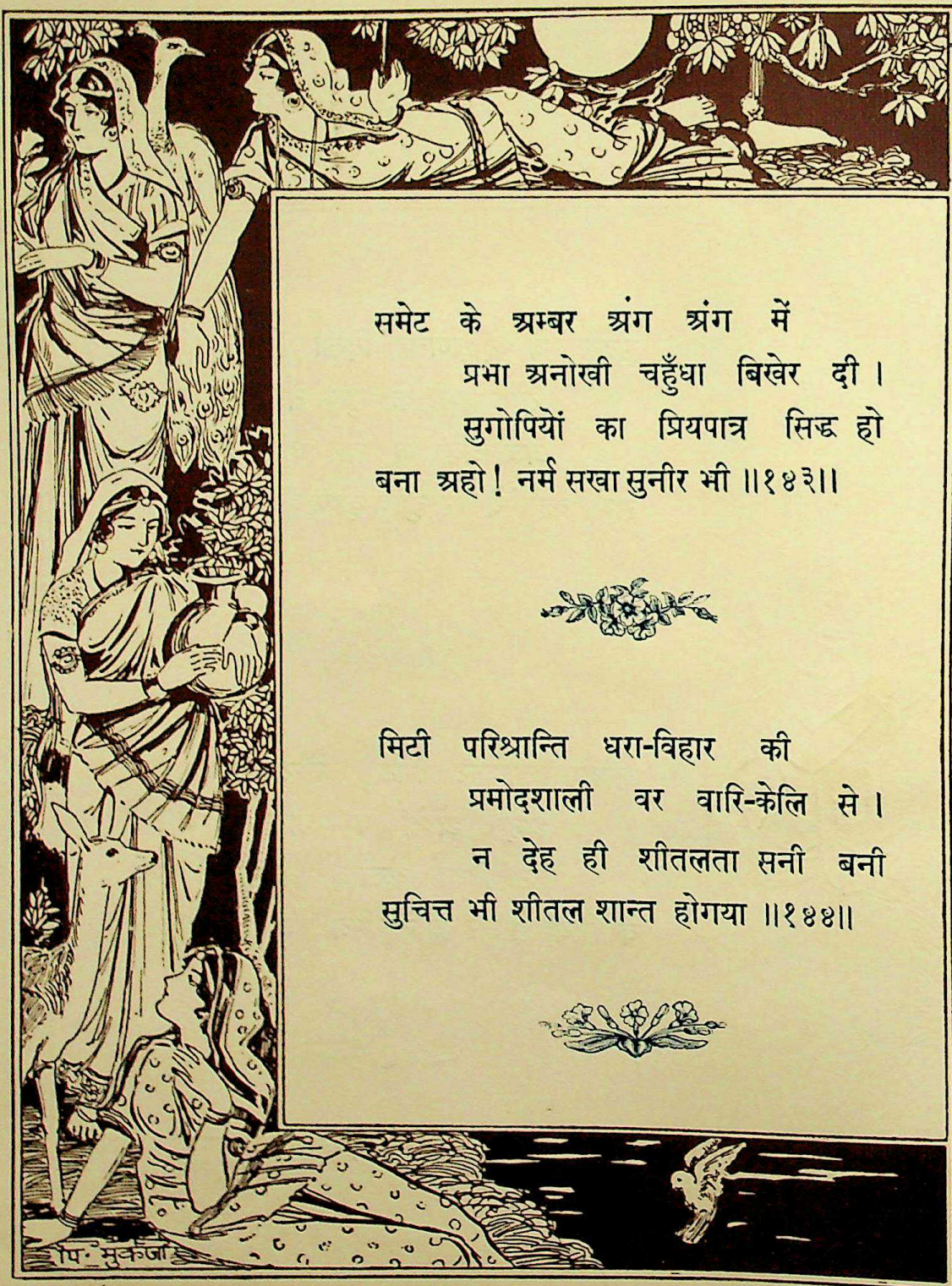
समेट के अम्बर अंग अंग में
प्रभा अनोखी चहुँधा बिखेर दी।
सुगोपियों का प्रियपात्र सिद्ध हो
बना अहो! नर्म सखा सुनीर भी ॥१४३॥

मिटी परिश्रान्ति धरा-विहार की
प्रमोदशाली वर वारि-केलि से।
न देह ही शीतलता सनी बनी
सुचित्त भी शीतल शान्त होगया ॥१४४॥
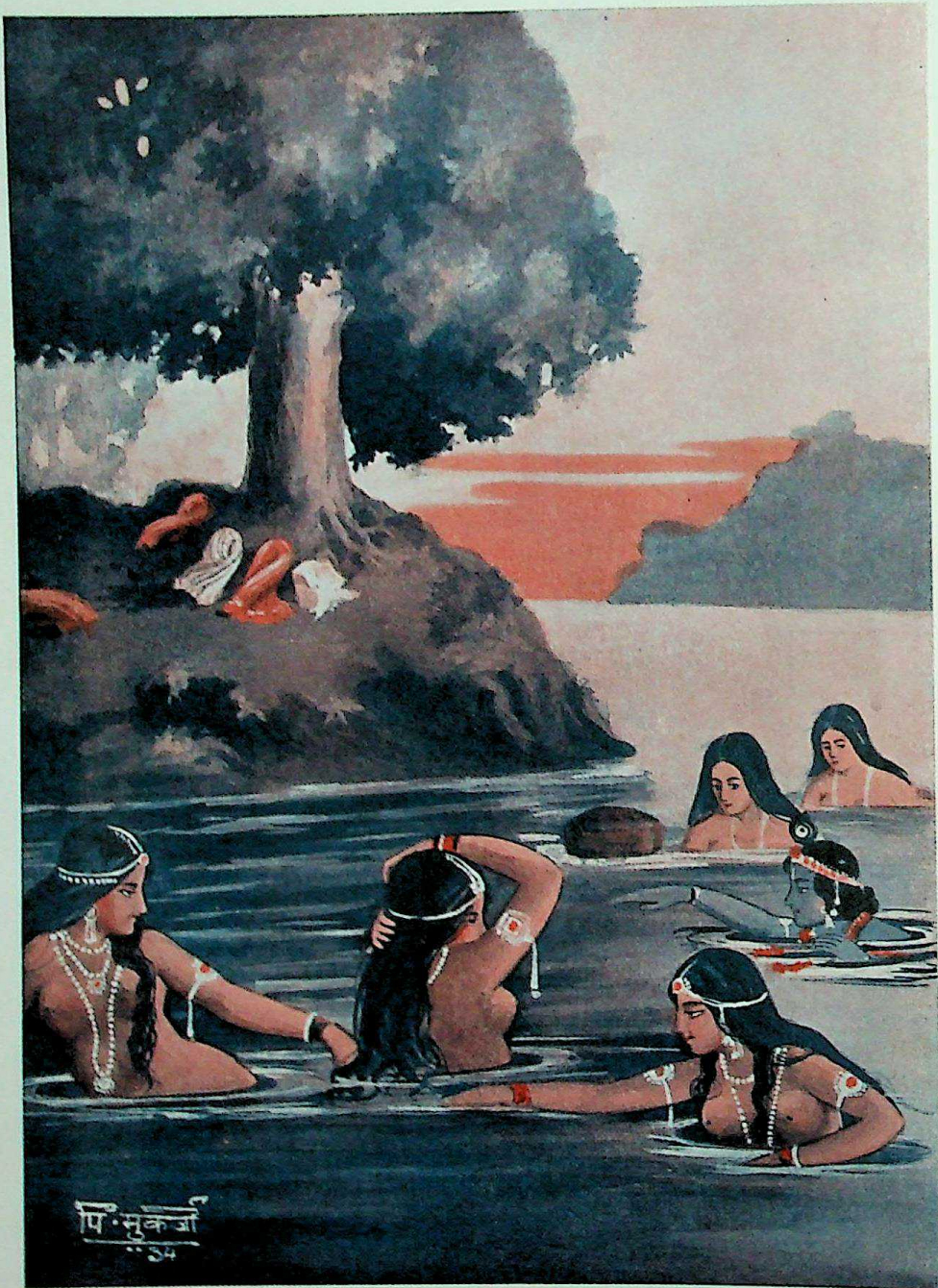
जलकेलि
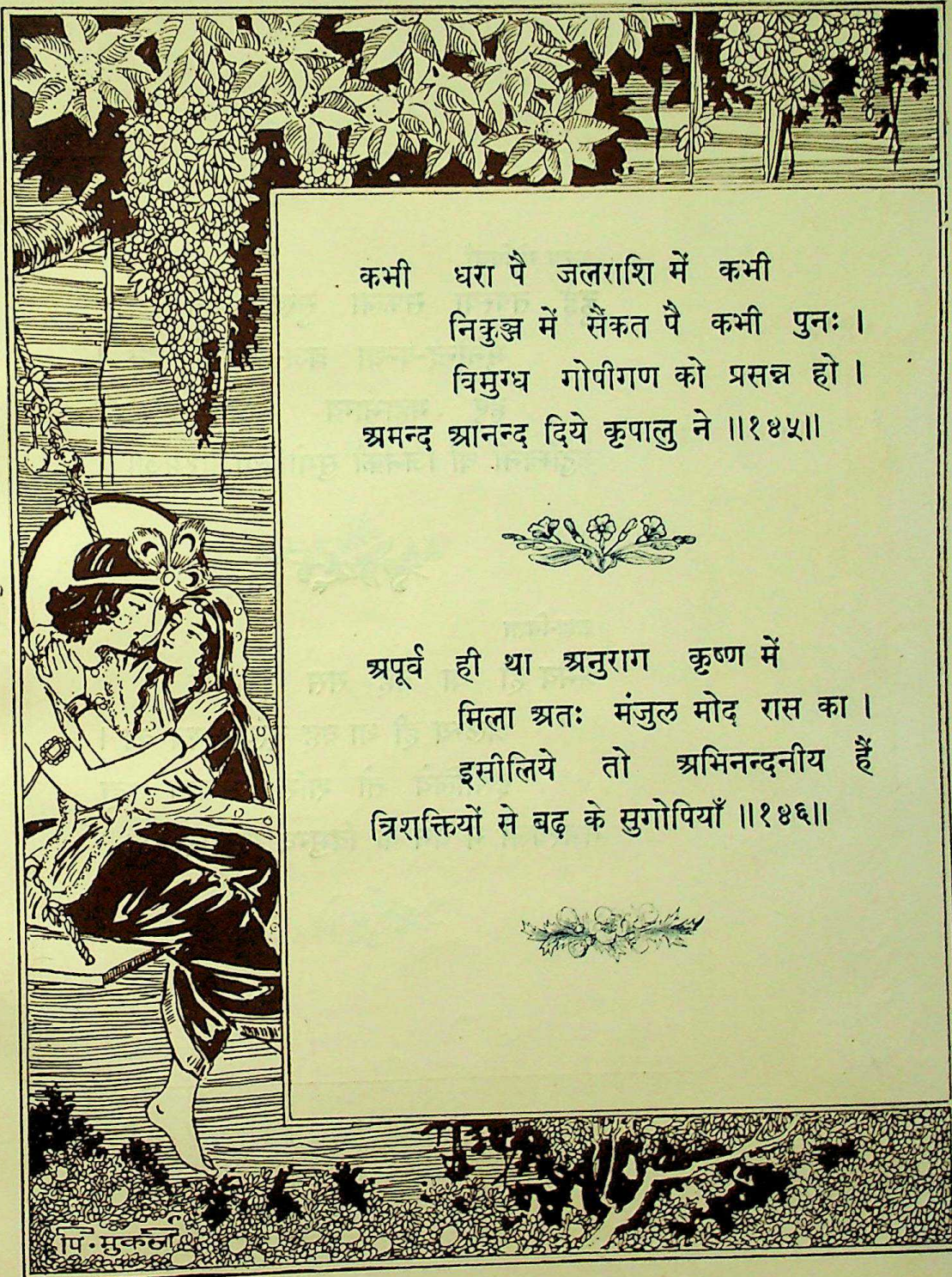
कभी धरा पै जलराशि में कभी
निकुञ्ज में सैकत पै कभी पुनः।
विमुग्ध गोपीगण को प्रसन्न हो।
अमन्द आनन्द दिये कृपालु ने ॥१४५॥

अपूर्व ही था अनुराग कृष्ण में
मिला अतः मंजुल मोद रास का।
इसीलिये तो अभिनन्दनीय हैं
त्रिशक्तियों से बढ़ के सुगोपियाँ ॥१४६॥
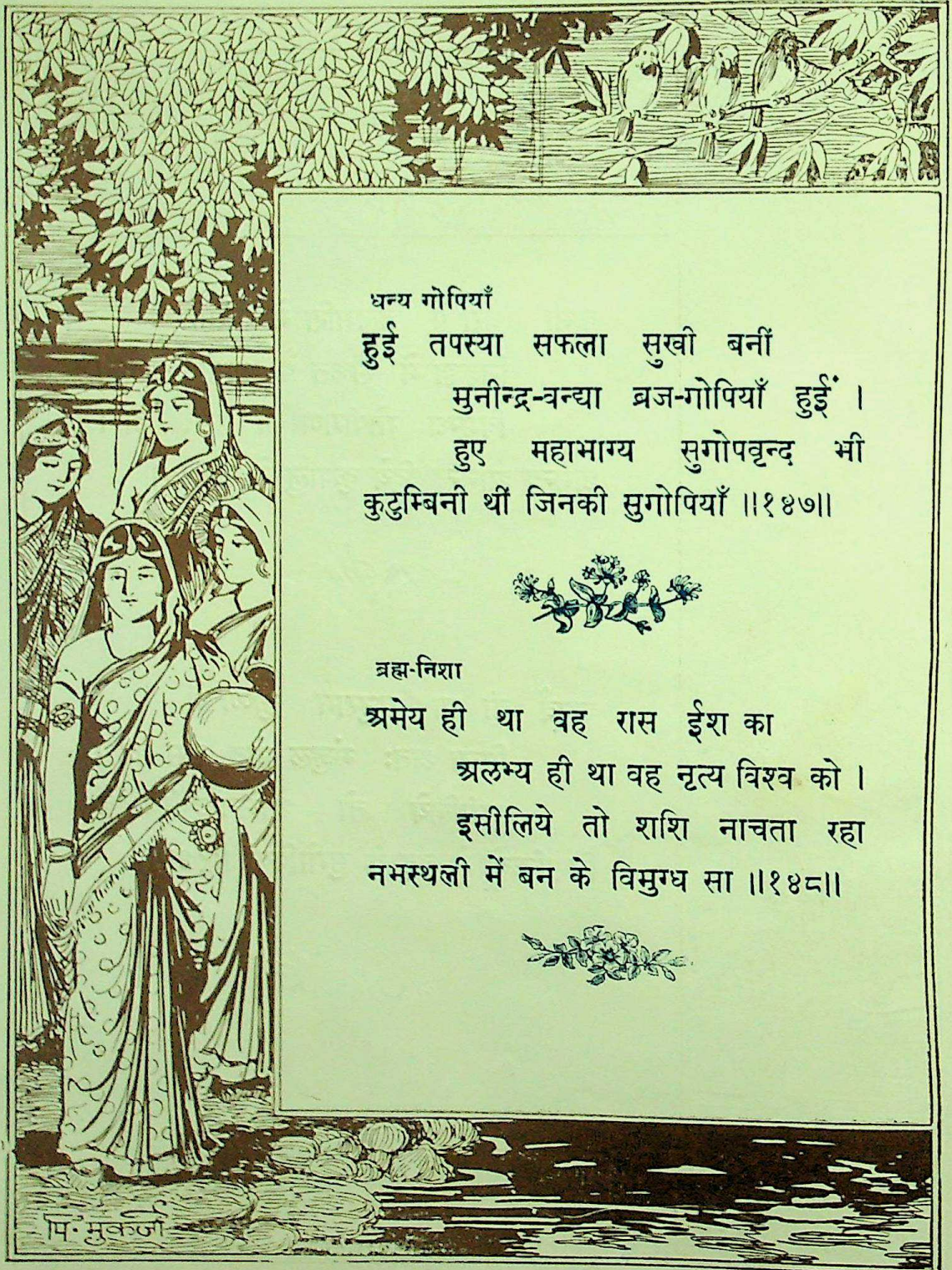
धन्य गोपियाँ

हुई तपस्या सफला सुखी बनीं
मुनीन्द्र-वन्द्या ब्रज-गोपियाँ हुईं ।
हुए महाभाग्य सुगोपवृन्द भी
कुटुम्बिनी थीं जिनकी सुगोपियाँ ॥१४७॥
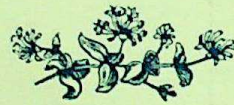
ब्रह्म-निशा

अमेय ही था वह रास ईश का
अलभ्य ही था वह नृत्य विश्व को ।
इसीलिये तो शशि नाचता रहा
नभस्थली में बन के विमुग्ध सा ॥१४८॥
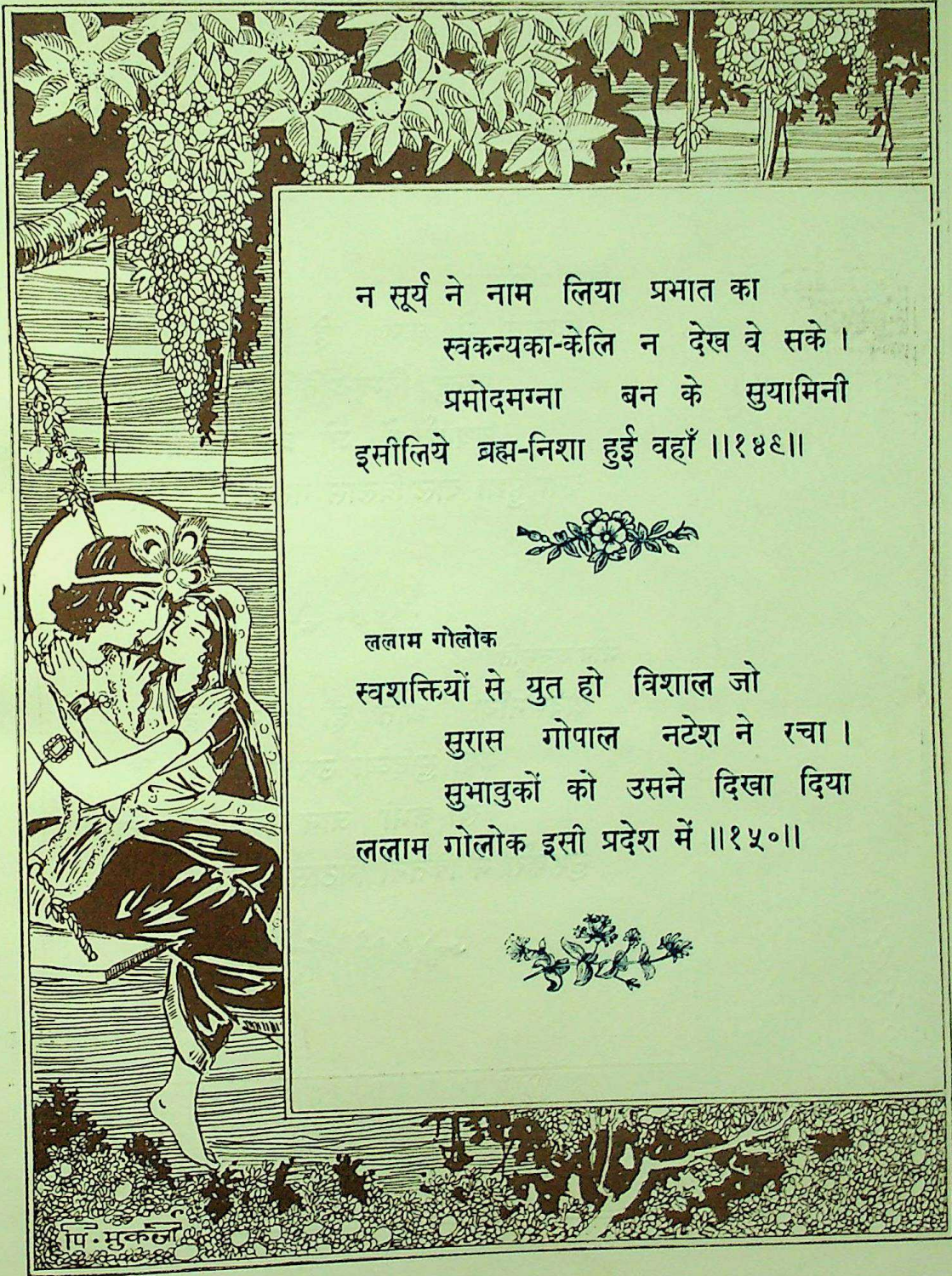
न सूर्य ने नाम लिया प्रभात का
स्वकन्यका-केलि न देख वे सके।
प्रमोदमग्ना बन के सुयामिनी
इसीलिये ब्रह्म-निशा हुई वहाँ ॥१४९॥

ललाम गोलोक

स्वशक्तियों से युत हो विशाल जो
सुरास गोपाल नटेश ने रचा।
सुभावुकों को उसने दिखा दिया
ललाम गोलोक इसी प्रदेश में ॥१५०॥
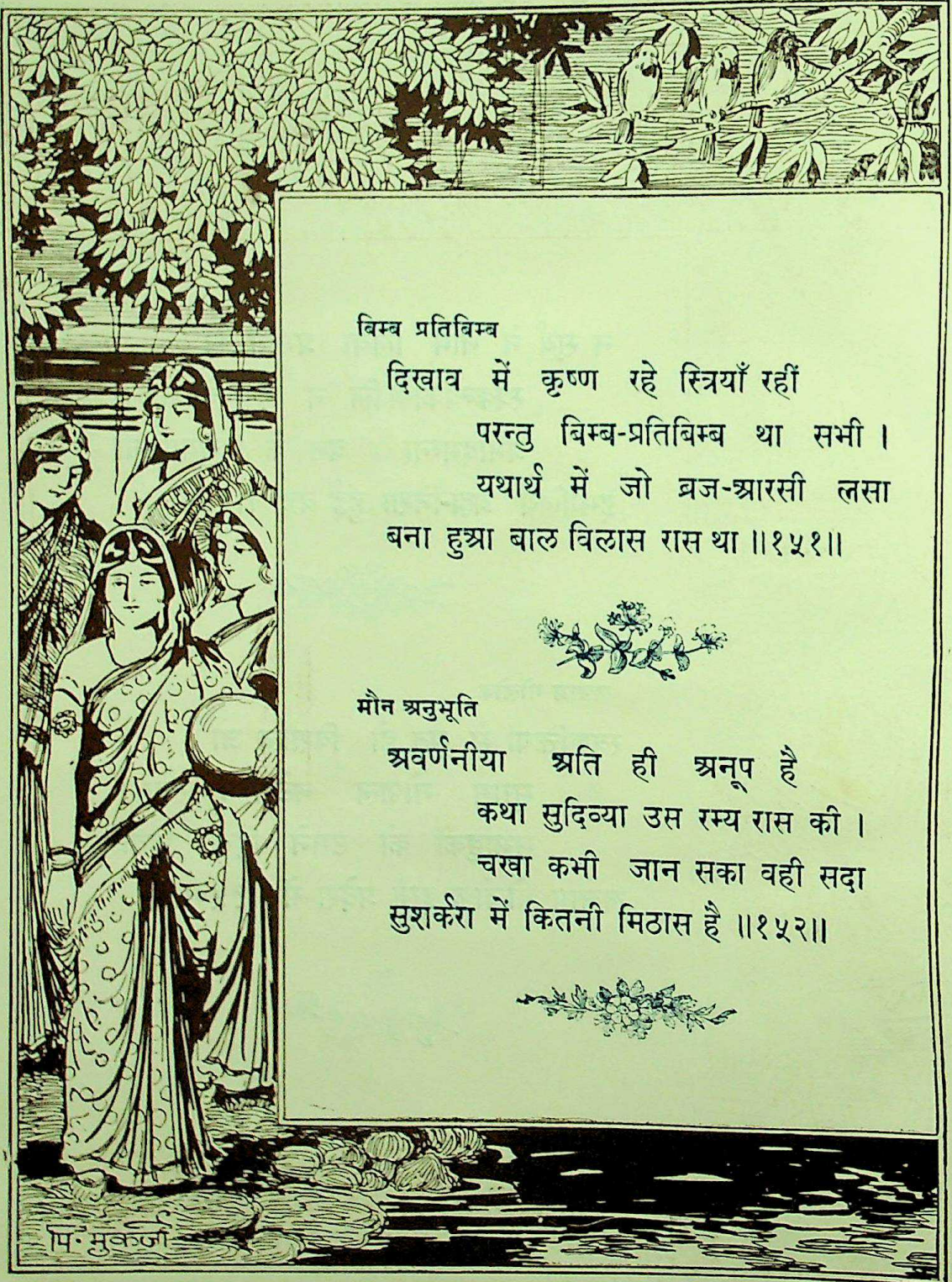
बिम्ब प्रतिबिम्ब

दिखाव में कृष्ण रहे स्त्रियाँ रहीं
परन्तु बिम्ब-प्रतिबिम्ब था सभी।
यथार्थ में जो ब्रज-आरसी लसा
बना हुआ बाल विलास रास था ॥१५१॥

मौन अनुभूति

अवर्णनीया अति ही अनूप है
कथा सुदिव्या उस रम्य रास की।
चखा कभी जान सका वही सदा
सुशर्करा में कितनी मिठास है ॥१५२॥
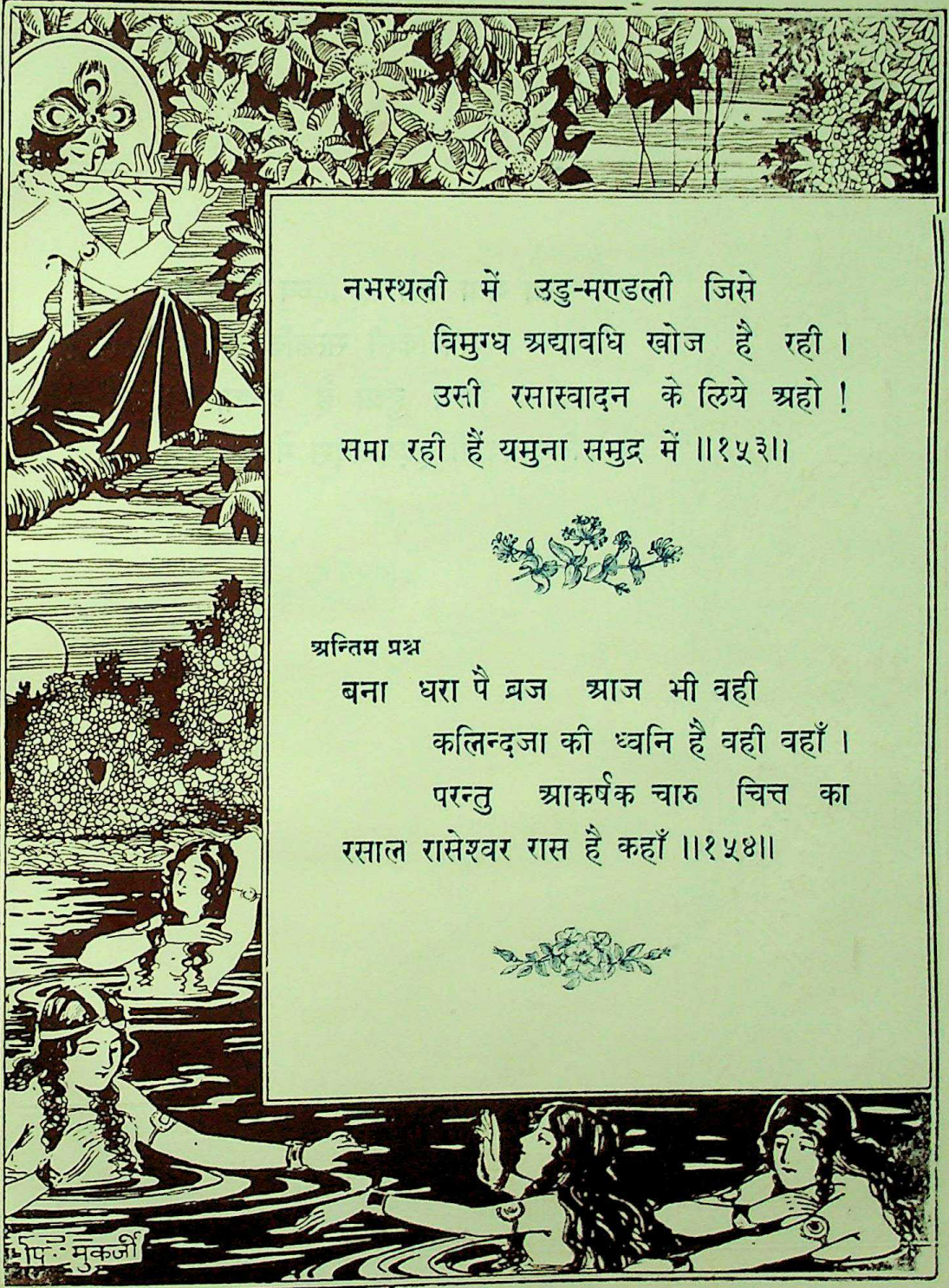
नभस्थली में उडु-मण्डली जिसे
विमुग्ध अद्यावधि खोज है रही।
उसी रसास्वादन के लिये अहो!
समा रही हैं यमुना समुद्र में ॥१५३॥

अन्तिम प्रश्न

बना धरा पै ब्रज आज भी वही
कलिन्दजा की ध्वनि है वही वहाँ।
परन्तु आकर्षक चारु चित्त का
रसाल रासेश्वर रास है कहाँ ॥१५४॥

चला गया क्या वह दिव्य लोक को
बसा किसी सत्कवि कंठ में कहीं ?
छिपा हुआ है अथवा सुभक्त के—
विमुग्धकारी हृदय-प्रदेश में ॥१५५॥
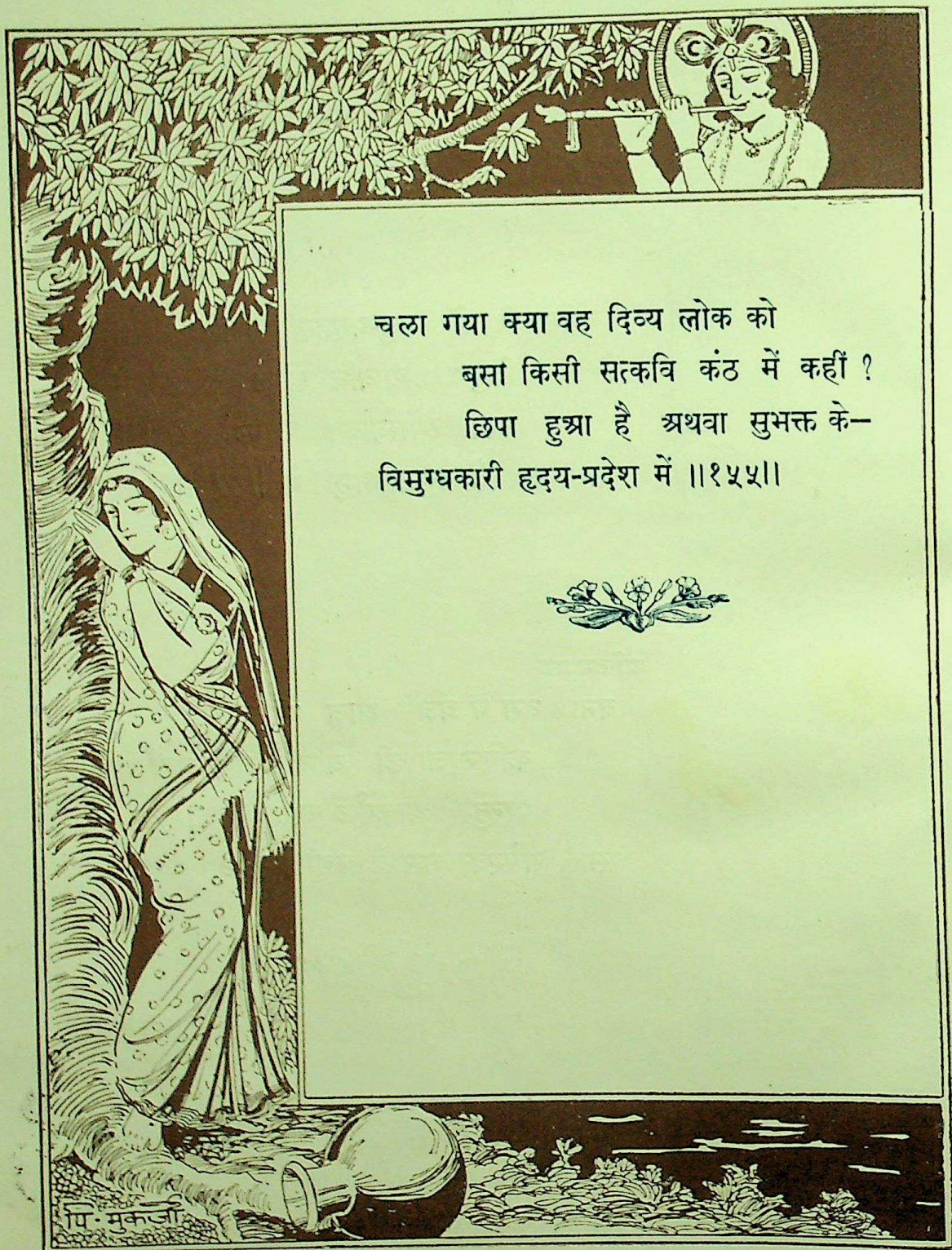
टिप्पणी

(मङ्गलाचरण)

१—स्मिताभा : मुस्कुराहट की कान्ति।

२—नीली कंजद्युति : इन्दीवर की नीली प्रभा।

प्रभात श्री : प्रातः काल की शोभा।

मनसिज-सखी : कामोद्दीपन करने वाली अतएव काम की सहचरी।

मूर्ति रति की : १. प्रेम की मूर्ति; २. काम की पत्नी की मूर्ति।

३—त्रिभंगी झाँकी : श्रीकृष्ण जी के खड़े रहने के खास ढंग की झाँकी। वह अदा जिसमें गरदन, कमर और पैर जरा टेढ़े रहते हैं।

त्रिविध सुखदा : १ दैहिक, दैविक और भौतिक सुखों को देने वाली। २. शारीरिक, मानसिक और आत्मिक सुखों की देने वाली।

तन्मय बने : तन्मय बने हुए।

भूले भ्रमर सम : उस भौंरे के समान (अपना मान—व्यक्तित्व-ज्ञान भुला देते हैं) जो (भ्रमर का ध्यान करता हुआ अपने कीटत्व को) भूल जाता है (अथवा जो कमल में बँधा हुआ अपनी काठ काटने की कठोर वृत्ति को भूल जाता है)।

४—दिनमणि-सुता : यमुना।

श्यामा-कान्त : राधारमण।

प्रथित रस रास-प्रणयिता : सुप्रसिद्ध रस रास रचाने वाले।

प्रसादाम्भोज श्री : प्रसादरूपी कमल से उत्पन्न होने वाली लक्ष्मी।

५—सुवंशस्था गाथा श्रुति मधुर लावे शिखिरिणी : १. सुनने में मधुर यह शिखरिणी छन्द वंशस्थ वृत्तों में कही गई कथा को प्रगट कर दे। २. अनेक शिखरों वाली कल्पना सद्वंशजात श्रुति मधुर गाथा को प्रगट कर दे।

टिप्पणी

१—विभूति : (१) भभूत, (२) ऐश्वर्य।
अभिन्न संयोग वियोग योगिनी : (१) श्रीकृष्ण और गोपियों के संयोग और वियोग का एक साथ सुयोग लाने वाली। (२) भक्ति की अभिन्न संयोग-वियोग वाली उत्कृष्टतम अवस्था का सुअवसर प्रकट करने वाली।

नोट— एक तो इस पंक्ति में भविष्य-कथा का पूर्ण संकेत है, दूसरे वियोगिनी संयोगिनी और योगिनी सुन्दरियों के साथ शरद्‌निशा का भी वर्णन हो गया।

२—मृगाङ्क रेखा : (चन्द्र पक्ष में) कलंक-रेखा, (ब्राह्मण पक्ष में) यज्ञोपवीत के समान पड़ी हुई कृष्णाजिन रेखा, (कानन पक्ष में) मृगों के पद-चिह्न की रेखा, (नरेश-पक्ष में) मृगया की अङ्क रेखा अथवा मृगमद—कस्तूरी—की अंक रेखा।
द्विजेश : (१) चन्द्र, (२) ब्राह्मण।
नोट—इस छन्द के भी चार अर्थ हैं। प्रधान तो शरच्चन्द्र का ही वर्णन है।

३—दुग्धाम्बुधि : क्षीर समुद्र।
रजताद्रि श्रृंग : चाँदी का पहाड़, कैलास।

नोट—इसमें ब्रह्मनिवास, विष्णुनिवास (दुग्धाम्बुधि), शिवनिवास (रजताद्रि श्रृङ्ग), और इन्द्र-निवास (स्वर्ग) चारों की शोभा ब्रज में दिखा दी गई है।

४—माघवनी : मघवा की (इन्द्र की)।
वसुन्धरा भाल कनी : पृथ्वी के मस्तक की बिन्दी
वृन्दारक : देवता।
वनी : छोटा जंगल।

नोट—'वसुन्धरा भाल कनी रसाल सी' का सन्धि-विच्छेद करने पर 'वसुन्धरा आभा अलक नीर साल सी' भी पाठ हो सकता है जिसका अर्थ यह है कि वृन्दावन नामक स्थल की बनी वसुन्धरा की आभा (प्रकाश) थी, वसुन्धरा की अलक (शीर्ष स्थानीय) थी, वसुन्धरा का नीर (आब, तेज) थी, और वसुन्धरा का साल (शाल वृक्ष जो अपनी उन्नति के लिये प्रख्यात है और जिसके विषय में कहा गया है—'भव-बन्धन को भेद गगन में उठने वाले शाल ! प्रणाम') थी।

५—त्रिशक्तियाँ : गिरा (सरस्वती), रमा (लक्ष्मी), उमा (काली)।
त्रिकाल : दिन, रात, सन्ध्या।

त्रिलोक आलोक लता : तीनों लोकों में—स्वर्ग, मृर्त्य, पाताल में—पुण्य-प्रकाश की बेल के समान।
त्रिताप : दैहिक, दैविक, और भौतिक ताप।
तमारि : सूर्य।
तमारितनया : यमुना।

नोट—यमुना-जल में दिन में लक्ष्मी के समान उज्ज्वलता रहती है, सन्ध्या में सरस्वती के समान रक्तिमा रहती है और रात्रि में काली के समान श्यामता रहती है। इस तरह व्रज की अकेली एक यमुना तीनों महाशक्तियों के बराबर बताई गई हैं।

६—विचित्र वर्णांयुत : सात्विक, राजस और तामस वर्णों के समान रंग-विरंगे फल-पत्तों आदि से युक्त।

नोट—(१) यहाँ पन्ने के समान हरे पत्ते वाला और माणिक के समान लाल फलों वाला होने के कारण वट वृक्ष सुरत्न सौन्दर्य समुद्रसार कहा गया है। (२) अपनी शुचिता और समृद्धि के कारण वह चरित्र साक्षी कहा गया है तथा विचित्र वर्णांयुत व्यापकता और साथ ही साथ चरित्र-साक्षिता के कारण ही वह चित्त-चित्र-सा कहा गया है।

७—सुधांशु : चन्द्र।
रश्मि सुधा सुधार : किरण पीयूष की अच्छी धारा।
रस की रसालता : (१) प्रेम का आनन्द, (२) शृंगार की कान्ति, (३) आत्मा की अनुभूति, (४) प्रकृति काव्य की कमनीयता, (५) भाव का आस्वाद।

८—निसर्ग आह्वान : प्रकृति की मौन पुकार—शोभायुत वनश्री ने इस प्रकार उनके हृदय को आकृष्ट किया मानो बुला रही हो।
रसा : पृथ्वी।

९—निरभ्र : बिना बादल वाला।

१०—शिखि-पंख : मोर पंख।
तड़ित् : बिजली।

१२—प्रवाल : मूँगा।

१४—समागमेहामय : मिलने की इच्छा रखने वाली।
कहे गये कर्षण से सुकृष्ण जो : आकर्षणकारी होने के कारण ही जिनका नाम कृष्ण पड़ा है।

१५—समुद्भूत : उत्पन्न।
जगन्निवास : जगत जिसमें निवास करता है वह, अर्थात् ईश्वर।
बात सुचित्त मोहिनी : भक्त लोगों अथवा सज्जन-हृदयों को मोहने वाली बात।
चिताई : चैतन्य की, बजाई।
काम भरी : क्लीं मंत्र संयुक्त अथवा आकर्षणकारी कामना से भरी हुई।

१६—सुपक्व बिम्बाधर : पकी हुई कुँदरू के समान लाल ओंठ।
सुवंशजाता : बाँस के अच्छे कुल में उत्पन्न। वह बाँस का वृक्ष अवश्य धन्य और कुलीन है जिससे ऐसी वंशी उत्पन्न हुई।
नचा रहीं सुस्वर नाच नाच के : उँगलियाँ नाच नाच कर राग को भी मानों नचा रही थीं।

१७—सौम्य : नेत्ररंजक अथवा हृदयरंजक।
विभोर : तन्मय।
निसर्ग : प्रकृति।

१८—सुवंशजा थी मधुरा सुवंश सी : वंशी अच्छे बाँस की बनी हुई थी और (बाँस की बनी हुई होने पर भी) गन्ने के समान मधुर थी (इसमें यह विशेषता थी)। वंश का अर्थ बाँस भी है और एक प्रकार का गन्ना भी।
सुवंश रूपा : सत्कुल की प्रत्यक्ष मूर्ति। जो भगवान् के मुँह लगी, उसके कुल का क्या कहना!
प्रथिता सुवंश में : सुविज्ञ सज्जनों में सुविख्यात।
सुवंश संभ्रान्ति हरी : सद्वंशजात गोपियों की कुल-कानि छुटाने वाली।
सुवंश विस्तारकरी : मदन बाणों की वर्षा-सी करने वाली। वंश का अर्थ है—बाण; सुवंश हुआ अच्छा बाण अथवा पुष्प बाण।

१९—जगत् पिता में जग लीन हो गया : उनके हृदय के सब भाव श्रीकृष्ण की ओर इस प्रकार आकृष्ट हो गये कि वे कृष्ण-तन्मय हो गयीं।

२१—त्वरा युक्त : शीघ्रता के साथ।

२४—समाराध्य : दूसरे लोग जिनकी आराधना करते हैं। असीम सौन्दर्य के कारण जिनकी गुलामी करने को भी लोग तैयार हो सकते थे।
संभ्रम : मान-मर्यादा।
सदात्म-विश्वास : अपनी शक्तियों पर भरोसा।

२६—त्रिशक्तियाँ : उमा, रमा, ब्रह्माणी।
सुराधिका : (१) राधा जी, (२) देवताओं से भी अधिक महत्व वाली।

२७—भाव यह है कि चीरहरण के प्रसंग में जो कात्यायनीव्रत किया गया था वह इसी अभिप्राय से था कि उन व्रज-कुमारिकाओं को श्रीकृष्ण पतिरूप से आनन्द दें। रास रच कर भगवान् ने उसी व्रत को सफल किया था।

२८—पुनीत कैसे बन की धरा हुई? : इस वन प्रान्त को अपने शुभागमन से इस प्रकार पवित्र करने का क्या अभिप्राय है? अर्थात् आप लोग यहाँ क्यों आई हैं?

२६—श्वापद संकुला : जंगली हिंसक पशुओं से भरी हुई।

३३—हेय : तिरस्कार योग्य।

३४—घन-प्रभा : बादलों की सी चमक जो बिल्कुल क्षण-स्थायी रहा करती है।

३५—औपपत्य : पर-पुरुष की ओर आसक्ति।

३६—आशु : झटपट।
स्वसद्म में : अपने अपने घर पर रह कर ही।

३८—आवृत्ति : दुहराना।
उच्छृङ्खलता : अमर्यादा, असंयम।
अनिष्ट : अवाञ्छित।

३९—वज्र-निनादिनी : वज्र के समान कठोर गर्जना वाली।
जड़ीभूत : पत्थर सी, अचेतन सी।

४०—जलार्द्र हो : जल से भींग कर।

४१—समाकर्षण : भरपूर आकर्षण। भाव यह है कि वंशी बजा कर जब हमें आकृष्ट किया, तब अब इस प्रकार दूर करना उचित नहीं। क्या स्वामि-धर्म यही कहता है कि लोगों को बाण के समान पहिले खींच लो फिर दूर फेंक दो ?

४२—व्रजार्तिहारिन् : व्रज के कष्ट दूर करने वाले।
अधरामृतस्पृहा : अधरोष्ठ का अमृत पीने की लालसा।

४३—रमा-समाह्लादक : लक्ष्मी जी को प्रसन्न करने वाला।

४४—सुवंशिका : अच्छे वंश वाली।

४५—ध्येय कुटुम्ब रीति के : लोक धर्म तो केवल इसीलिये पाला जाता है जिसमें आपकी प्राप्ति हो जाय।

४६—त्वदायत्त जगत्प्रवृत्ति है : जगत की गति तो सब आप ही पर आश्रित है।
कहाँ यहाँ गर्हित औपपत्य है : आपको प्राप्त करने में गर्हित औपपत्य की बात ही कहाँ आती है !

४७—रहा सहा : नाम शेष, नाम मात्र को बचा हुआ।
खिलीं : खिल गयीं।

रमा समा : भगवान् की अर्द्धाङ्गिनी लक्ष्मी के समान ।

४८—निसर्ग रम्या : जो स्वभाव से ही सुन्दर थीं ।
हिमांशु सम्प्लावित : चन्द्रमा की शीतल किरणों से स्निग्ध ।
प्रहृष्टा : प्रसन्न होकर ।

४६—आपको विशेषिता जान : अपने को विशिष्ट सौभाग्यवती मान कर, अपने को असाधारण व्यक्ति समझ कर ।

५०—प्रवृद्ध गर्वांकुर : बढ़ा हुआ गर्व का अंकुर ।

५१—सुभक्ति ही की वर मूर्ति राधिका : देखिये भूमिका ।
विभक्ति-सी संग लगी चली गयी : व्याकरण में—विशेष करके संस्कृत व्याकरण में—जिस प्रकार विभक्तियाँ संज्ञा शब्द के साथ अविभक्त सी बन कर संग लगी चली जाती हैं उसी प्रकार श्याम से अविभक्त बन कर राधिका जी उनके साथ चली गयीं ।

५२—वित्रस्त : विशेष त्रास-युक्त ।

५४—इन्दीवर : नील कमल ।
हरे भरे : (१) प्रसन्न, (२) हरे रंग के ।
हरी छटा : (१) प्रसन्नता युक्त छटा, (२) नील और पीत वर्णों के संयोग से बनी हुई हरे रंग की प्रभा ।
रमा रमेश : राधा कृष्ण ।

५५—आतुरा : व्याकुल ।

५७—निकुंज वीथी : निकुञ्ज के मार्ग ।

५८—रसे : पृथ्वी (सम्बोधन) ।
रसज्ञे : रस को समझने वाली, दाम्पत्य के मर्म को जानने वाली ।
सपत्निभाव : सौतिया डाह ।
नटेश : श्रीकृष्ण ।
परेश : परमात्मा ।

५६—मंजुल कान्ति-धाम में : मंजुल कान्ति वाले श्रीकृष्ण में ।
कुमुदालि : कुमुद पंक्ति ।

६०—परावरेश : इस लोक और परलोक के स्वामी परमात्मा ।

६२—समुद्दीपन : संवर्द्धन।
मुखेन्दु लग्ना छवि से रदाङ्क की : मुख चन्द्र पर पड़ी हुई दन्त क्षत की छवि से।
क्षत : चिन्ह, घाव।
क्षति-पूर्ति : कमी को पूरा करना।

६३—द्वैत-दुकूल : मैं क्षुद्र जीव हूँ, वे महा महिम परमात्मा हैं, इस संकीर्णता-मय द्वैत-भाव के परदे।
व्यवधान : भेद, विच्छेद, विभाग, परदा।
नीविमोक्ष : नाड़े के फन्द छुड़ाना।
दिखा दिया मोक्ष सुनीविमोक्ष में : कपड़े हटा देने पर जिस प्रकार शरीरों का अभिन्न संयोग हो जाता है, द्वैत-भावना हटा देने पर उसी प्रकार जीवात्मा और परमात्मा का अभिन्न संयोग अथवा मोक्ष हो जाता है।

६४—सुरति-क्रिया : सुरति-शब्द-योग, योगियों का अभीष्ट जीव-ब्रह्म-सम्मेलन।
सुभोगियों की : राधा-कृष्ण की।
सुरत क्रिया : दाम्पत्य संभोग।

नोट—छंद नं० ६१ से ६४ तक कटाक्ष, मन्दहास्य, आलिंगन, चुम्बन, दन्तक्षत, नखक्षत, नीविमोक्ष और सुरत क्रिया के रूप में वर्णित अष्टाङ्ग भोग यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि वाले अष्टाङ्ग योग की ओर भी संकेत कर रहा है।

६५—न काम की थी...रति क्रिया : (यद्यपि) रति क्रिया निकाम काममयी (सी) हुई (तथापि उसमें) काम की कुछ कामना न थी। कहावत है कि 'विकार हेतौ सति विक्रयन्ते येषाम् न चेतांसि त एव धीरा: ' योगेश्वरता इसी में थी कि निकाम काममयी सी रतिक्रिया रहते हुए भी हृदय में काम की कामना अङ्कुरित तक न होने पायी।
निकाम : यथेष्ट।

६६—समाराधक राधिका बने : अनुकूल नायक बन कर जो पहिले समाराधक थे, वे अब राधिका बन कर समाराध्य हो गये।
बनी समाराध्य नटेश राधिका : जो राधिका रूप में पहले आराध्य बनी हुई थीं, वे अब कृष्ण बन कर समाराधिका बन गयीं।

६७—प्रणयाभिमान : प्रणय-कोप। संयोगावस्था को और भी सुखद बनाने के लिये कृत्रिम वियोग के रूप में जो मान किया जाता है—रूठा जाता है—उसे प्रणयाभिमान, प्रेममान, प्रणय-कलह आदि कहते हैं।

६८—निरुद्ध होके : बँध कर।
इस सम्बंध में रसखान का सुप्रसिद्ध सवैया पाठकों को विदित ही होगा।

६९—रमा : राधा। (कई स्थलों में राधा को भी लक्ष्मी का अवतार माना गया है। कुछ ग्रंथों में उन्हें भगवान् का वाम अंश माना गया है, इस तरह भी हम उन्हें रमा कह सकते हैं। श्रीकृष्ण के लिये राधिका जी परम रम्य थीं इसलिये भी वे रमा कही जा सकती हैं।)
सजा सजा : सजा सजा कर।

७०—केवलता : अकेलापन।
कृपालु : समग्र गोपियों पर कृपा करने वाले।

७१—समारोहण हेतु : चढ़ने के लिये।

७२—प्रमाद में ज्ञान-कथा भरी हुई : राधिका जी को अकेली छोड़ श्रीकृष्ण का इस प्रकार अदृश्य हो जाना सामान्य दृष्टि में भले ही प्रमादपूर्ण अथवा अरसिकता पूर्ण जान पड़े परन्तु उसमें सद्-ज्ञान ओत-प्रोत भरा हुआ था, क्योंकि इसी तरह तो भगवान् अपने भक्त की अहंमन्यता को मिटाते हैं।
विषाद ही में जिनका प्रसाद था : सामान्य दृष्टि से भले ही यह जान पड़े कि भगवान् ने राधिका जी को विषाद पूर्ण कर दिया परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इसी विषाद में भगवान् का बड़ा भारी प्रसाद (आशीर्वाद, प्रसन्नता अथवा वरदान) निहित था।

७३—स्व-भाव : अपना गोपी-भाव।

७४—द्विरेफ-गुञ्जारित : भौंरे जिसमें गुञ्जार कर रहे हैं वह।

७५—गोरस-दान : (१) दूध का टैक्स, (२) वाणी-विलास रूपी दान।
रस : प्रेम, आनन्द, शृङ्गार-क्रिया, वाग्-विलास आदि।
नहीं बचोगी रस-दान के बिना : (१) तुम्हें रस-दान देना ही पड़ेगा, (२) तुम्हें रस-दान अवश्य मिलेगा।

७६—रचा व्रत-स्नान विचित्र नग्न हो : स्त्रियों ने धार्मिक भाव से जो स्नान किया था उसमें विचित्र अधार्मिकता यह दिखाई थी कि साड़ियाँ किनारे रख कर यमुना में नग्न ही स्नान किया था। एक तो इस अधार्मिकता का उन्हें दण्ड देना था इसलिये भगवान् ने चीरों को ऊपर टाँग दिया था। दूसरे जब वे गोपियाँ श्रीकृष्ण को कान्तभाव से वरण करना चाहती थीं तो फिर उनके सामने नग्न होकर आने में उन्हें ऐतराज़ ही क्यों होना चाहिये था ? फिर शारीरिक नग्नता तो विचित्र है ही, असल दिगम्बरी रीति तो आत्मा की नग्नता में है। ईश्वर के आगे अपनी आत्मा का

गुप्त से गुप्त अंग भी प्रकट कर दे और इसके लिये लोक-मर्यादा की भी कोई परवाह न करे, यही सच्ची दिगम्बरी रीति है।

दिगम्बरी रीति : (१) नंगों की-सी रीति, (२) निस्सीम त्याग की परिपाटी, (३) पूर्ण तन्मयता की पद्धति, (४) लोक-मर्यादा तोड़ने की प्रणाली।

स्पृहा : इच्छा।

७८—गये : नष्ट हो गये।

७९—नया न मृद्भक्षण दोष है गहा : (१) मैंने मिट्टी खाने का यह नया दोष नहीं ग्रहण किया है। (२) मिट्टी खाना—जगत को अपने में लीन करना—मेरे लिये कोई नई बात नहीं है।

विलोक : (१) देख, (२) तीनों लोक जिससे निकले हैं (ऐसा मुख), (३) जो त्रैलोक्य से भी बड़ा है—विशेष है—(ऐसा मुख)।

८०—तृणावर्त्त : (१) एक राक्षस का नाम, (२) बवण्डर।

दुरन्त : जिसका अन्त मिलना कठिन है।

८१—कनिष्ठिका : छोटी उँगली।

गिरिराज : गोवर्द्धन।

नाग है नथा : (१) कालीय नाग नाथ दिया गया है, (२) नाग वास्तव में न था और न है। वह तो विषोपम जल को सुधा-मधुर बनाने के लिये भगवान् की एक लीला थी।

नोट—इन तीन छन्दों में क्षिति, जल, नभ, पावक, पवन वाले पाँचों तत्वों पर भगवान् की विजय दिखाने वाली लीलाओं का उल्लेख हुआ है। छोटे से मुख के भीतर अखिल ब्रह्माण्ड दिखा कर, बवण्डर रूपी तृणावर्त पर अपना आधिपत्य जमा कर, धधकती हुई वन की अग्नि पीकर विषमय जल को अमृत सदृश बना कर और कनिष्ठिका उँगली पर गिरिराज को उठा कर उन्होंने क्रमशः नभतत्व, अनलतत्व, जलतत्व और पृथ्वी तत्व पर अपनी विजय दिखला दी है। गोपियों ने इन्हीं और ऐसी ही लीलाओं का अनुकरण किया।

८२—बलवीर : बलभद्र भैया।

सुभाव : अच्छे भाव।

व्रजेश लीला अनुगामिनी बनीं : श्रीकृष्ण की लीलाओं का अनुकरण करने वाली बनीं।

८३—पदचिन्ह : (१) भूमि पर बने हुये चरण-चिह्न, (२) भक्ति-मार्ग के वे रहस्यमय संकेत जिनके सहारे भक्त भगवान् अनन्त वासुदेव की प्राप्ति कर सकता है।

८४—पदाङ्क : पद-चिन्ह।

८५—हुई समाराधित सिद्ध साधना : राधा की समाराधित साधना सिद्ध हो गयी, क्योंकि उसे समाराध्य उपेन्द्र ने चुना।

८७—विकीर्ण : बिखरे हुये ।
कुसुम-प्रिय-क्रिया : कुसुम प्रिय भगवान् की श्रृङ्गार-क्रियायें ।
मूर्द्धज : केश ।
यहाँ रचे कुन्तल कान्त कान्त ने : यहाँ श्रीकृष्ण ने राधा के सुन्दर केशों का श्रृङ्गार किया है ।

८८—रमा राम विराम सूचिका : राधा-कृष्ण के विश्राम की सूचना देने वाली—क्योंकि उनसे इत्र इत्यादि की लपटें उठ रही थीं ।
अलक्तकाङ्का : महावर के चिन्हों से अंकित ।

८९—विपन्ना : विपत्ति में पड़ी हुई ।
धि-युक्त राका : (१) राका शब्द के बीच में 'धि' लगा देने से राधिका शब्द बन जाता है । इसलिये श्री राधिका जी 'धि-युक्त राका' हुईं । (२) राधिका जी राका—पूर्णिमा की रात्रि—के समान ही उज्वल, निर्मल तो थीं ही, साथ ही वे कई बातों में राका से अधिक विशेषतायुक्त भी थीं ('धि-' शब्द विशेषता और बुद्धि की ओर भी संकेत कर रहा है ।)

९१—भाव यह है कि "राधिके !" सुन कर उन्होंने नेत्र खोले । शायद इस विचार से कि कृष्ण ही पुकार रहे हों । सामने मानवी आकृति देख उन्हें कृष्ण का भ्रम भी हुआ इसीलिये पहिले उलाहने के साथ 'मिले !' कहा ; फिर गोपियों की आकृति स्पष्ट होती गयी इसलिये उन्होंने शंकासूचक 'कहाँ' शब्द कहा ; फिर जब उन्हें निश्चय हो गया कि ये तो कृष्ण नहीं, गोपियाँ हैं तब "(हा) कृष्ण !" पुकार कर फिर गिर पड़ीं ।

९२—सुधास्रोत सहानुभूति के : सहानुभूति रूपी अमृत के झरने ।

९४—निरुद्ध वाष्पा : आँसू रोक कर (वाष्प : आँसू) ।

९८—मही जिसे पा महनीय है : यह पृथ्वी जिस मूर्ति को पाकर महिमायुक्त बन गयी है ।

९९—चलाइये चाल न चञ्चरीक की : एक फूल से दूसरे फूल पर उड़ते रहने वाले रस-लोभी चंचल भौंरे की-सी चाल न चलाइये—न प्रचारित कीजिये ।

१००—हृषीक हृद्धाम : (१) इन्द्रियों का केन्द्रस्थल (२) इन्द्रियों और हृदय का धाम ।

१०१—प्रथित-प्रभा : विख्यात दीप्ति ।
पुरातन : पुराण पुरुष, आदि पुरुष, जगत्पिता ।
प्रिय-व्रत : जिसको अपना प्रण प्रिय है ।
पुलकाङ्गिनी : पुलकयुक्त अंगों वाली, अत्यन्त प्रसन्न ।
पाणि पद्म : कर कमल ।

१०२—श्रान्त : थकी हुई।
सन्दर्शन : सम्यक् दर्शन, पूरी पूरी झाँकी।
सदुक्ति : उत्तम वाणी, रोचक उक्तियाँ।
सुधार दो : हमें ठीक मार्ग पर ला दो।
सु धार दो : अच्छी धारा दे दो। भाव यह है कि सदुक्ति से तो हमें सुधार दो और सुदिव्य सन्दर्शन से सौख्य सुधा सु धार दो।

१०३—योगेश्वर : योगिराज श्रीकृष्ण।

१०४—पद्म वक्त्र : मुख कमल।
आखण्डल : इन्द्र।
अखण्ड आखण्डल कान्ति खण्डिनी : इन्द्र की समूची शोभा को भी नीचा दिखा देने वाली।
स्मेर : प्रसन्नता, मुस्कुराहट।
स्मर स्मेरकरी : मदन को भी प्रसन्न कर देने वाली—मुग्ध कर देने वाली।
वपुच्छटा : वदन की कान्ति।

१०५ तरङ्गिनी : तरंगों वाली, आनन्द-कल्लोल वाली।

१०६ असंग : आसक्तिहीन, निःसंग ब्रह्म।
अनंग : मन, जिसके कोई अंग नहीं होते।
अनंग : कामदेव।
अनंग : शिथिल, अङ्गहीन।
भाव यह है कि गोपियों के मन की आसक्ति जब आसक्ति हीन ब्रह्म की ओर हो गयी तब फिर काम की भावना निश्चय ही शिथिल हो जाने वाली थी; क्योंकि पूर्ण काम ईश्वर की कामना में कामदेव का क्या काम!

१०७ सुसंग का रंग : सत्संग का रंग।
कुसंग उत्संग : दुर्व्यसन की गोद में (पड़े हुये)।
अपंग : विकलाङ्ग, सद्गति हीन।
मीन या कुरंग मातंग पतंग भृङ्ग का (कुढंग) : मछली, मृग, हाथी, पतिङ्गा और भौंरे की-सी बुरी हालत। मीन स्वाद के लालच में फँसती है, मृग तान सुन कर मुग्ध होता और बहेलिये के हाथ लग जाता है। हाथी पालतू हथिनी की त्वचा की रगड़ से बढ़ता चला जाता और गड्ढे में गिरता है। पतिङ्गा रूप पर जल मरता है। भौंरा सुगन्धि के चक्कर में आकर कमल में बँध जाता है। मनुष्य में तो ये पाँचों इन्द्रियाँ प्रबल रहती हैं, इसलिये यदि उसकी आसक्ति लौकिक पदार्थों पर रही, सत्पदार्थ—ब्रह्म—की ओर न रही तो वह इन पाँचों जीवों की सी बुरी हालत को प्राप्त होता है। इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवत का अन्यत्र कथित निम्नलिखित श्लोक द्रष्टव्य है :—

कुरंग मातंग पतंग भृंग मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
नरः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पंचभिरेव पञ्च ॥

१०८—पैर, पाणि, कटि : ज्ञान, भक्ति, कर्म; प्रणिपात, परिप्रश्न, सेवा आदि आदि के भी द्योतक हैं ।

१०९—श्रीमुख का प्रसाद : (१) मधुर वाणी, (२) सौम्य दर्शन, (३) उच्छिष्ट ताम्बूल ।

प्रथिता : प्रसिद्ध ।

प्रसाधिता : शृंगार पूर्ण, सज-धज वाली ।

११०—तृषातुरा : प्यास से व्याकुल ।

१११—प्रभाविलासी : चन्द्र-प्रभा में जो विलास कर रहा था अथवा जिस पर चन्द्र-प्रभा विलास कर रही थी वह ।

११३—हित-व्रती : दूसरों का हित करना ही जिनके जीवन का व्रत है ।

११४—इस छन्द का भाव यह है कि जो भक्ति की ओर भी विरक्त बनते हैं वे या तो पुरुषाधम हैं, विमूढ़ हैं, अकृतज्ञ हैं या पुरुषोत्तम हैं, मुनीश हैं, आप्त काम लोग हैं । भगवान न तो विमूढ़ ही हैं, न मुनीश ही । वे तो 'हम भक्तन के भक्त हमारे' कहने वाले सच्चे स्नेही हैं । उन्होंने भक्ति के बदले जो विरक्ति सी दिखाई है उसका कारण छंद ११६ में बताया है ।

११५—पास मैं वहीं : मैं वहीं समीप में उपस्थित हूँ ।

अभिन्न हैं भेदक नाम रूप भी : नाम और रूप ही एक वस्तु को दूसरी से विभिन्न किया करते हैं (वास्तव में तो सब वस्तुयें एक ही तत्व से बनी हुई हैं) । इसलिये नाम रूप ही भेदक हुये । परन्तु श्रीकृष्ण और गोपियों के सम्बन्ध में तो ये भेदक नाम रूप भी अभिन्न हैं । क्योंकि 'राधा-कृष्ण' और 'गोपी-कृष्ण' नाम तथा 'युगल झाँकी' और 'रास' के रूप इस अनभिन्नता को सिद्ध कर रहे हैं ।

११६—रस-पुष्टि के लिये : गोपियों की भाव-वृद्धि के लिये, वियोग में प्रेम का अच्छा परिपाक हो जाता है, इसलिये ।

शक्य : सम्भव ।

समूल उन्मूलन : जड़ से उखाड़ना ।

अनन्य साधारण कर्म : असामान्य कार्य । भाव यह है कि लोकलज्जा सरीखे सुदृढ़ बन्धन को जिस प्रकार कुल-वधू होकर भी तुम लोगों ने जड़ से उखाड़ फेंका है वैसा हर कोई नहीं कर सकता ।

११७—ऊर्मिवान : लहरों वाला ।

११६—रमे सभी में : सब की अन्तरात्मा में रमण करने वाले।

१२२—सचेत जो थे......जड़ शीघ्र हो गये : चैतन्य जीव तो आनन्द-मुग्ध होकर जड़ मूर्ति से बन गये और जड़ पदार्थ उस राग-लहरी के प्रभाव से चैतन्य के समान हो गये। मालकोश से पत्थर का पिघलना, श्री राग से सूखे वृक्ष का हरा हो जाना, दीपक से दिया का जल उठना, मलार से मेघों का छा जाना आदि प्रसिद्ध ही हैं।

१२३—लोला : चञ्चल।
लय-आलया : लय का घर, लय का आश्रय-स्थान।
सुखस्वना : मधुर शब्द वाली।
सुवंशिका के स्वर से अभिन्न थीं : वंशी के स्वर के साथ स्वर मिलाती थीं।

१२४—लास्य : स्त्रियों के नृत्य।
प्रभेद छाये स्वर और ताल के : ताल और स्वर के अनेक रूप व्यक्त किये गये।
प्रतीत होता : यही जान पड़ता था मानो।

१२५—सुभाव सन्दर्शन : नृत्य के समय जो भाव बताये जाते हैं, उनका प्रदर्शन।

१२६—असंख्य पुष्पावृत पुण्य भूमि की : असंख्य दिव्य फूल बरसा कर उस पुण्य भूमि को ढक दिया।

१२७—हुईं विदेहा इस भाँति तन्मया : (१) ऐसी तन्मय हुईं कि उन्हें अपनी देह तक की सुध न रही। (२) स्थूल-शरीर-विहीन वे अप्सरायें भी उस रास में तन्मय हो गयीं।

१२८—संवृत एक से हुए : सिमट कर एक व्यक्ति के समान बन गये।
ह्रास-विकास : संसार की उत्क्रान्ति और अपक्रान्ति का नियम।

१३०—अभिन्न संयोग वियोग भाव : (१) प्रेम की वह उत्कृष्टतम अवस्था जिसमें संयोग और वियोग का भेद नहीं रह जाता, (२) वह अवस्था जिसमें संयोग के बाद वियोग और वियोग के बाद संयोग इस शीघ्रता से आता जाता है कि दोनों अभिन्न से जान पड़ते हैं। भक्तों के लिये यह परम वाञ्छित अवस्था है क्योंकि इस अवस्था में वियोग की पुट के कारण संयोग का मज़ा बढ़ता ही जाता है और गर्व आने ही नहीं पाता।

१३२—बनी परिश्रान्ति महा फलप्रदा : गोपियों की थकावट भी अनन्त फलदायिनी बन गयी; क्योंकि इसी बहाने उन्हें 'आकर्षक अंग संग का' अभीष्ट लाभ मिल गया।

१३४—पतंगजा : यमुना।

१३५—छन्द का भाव यह है कि शान्त यमुना-जल में चन्द्र का जो पूर्ण बिम्ब पड़ रहा था, वह श्रीकृष्ण के प्रवेश करते ही हिल कर टुकड़े टुकड़े हो गया।

१३६—सुगेहिनी-सा : सद्गृहस्थ स्त्री के समान।

१३७—तमारिजा : यमुना।
आगत-भर्तृका-समा : उस नायिका के समान जिसका पति अभी विदेशों से लौट कर आया हुआ हो।

१३८—विशाल आकाश झुला झुला चुकीं : भाव यह है कि तरंगों के हिलते रहने से प्रतिबिम्बित आकाश भी हिल-हिल उठा।

१३९—सरस्वती-से : सरस्वती नदी के समान लाल रंग के।
अनुरक्त चीर : (१) लाल रंग की साड़ी, (२) प्रेमासक्त चीर (क्योंकि भीगने के कारण वह शरीर से चिपक गया था इसलिये शरीर पर आसक्त-सा जान पड़ता था)।
हुईं त्रिवेणी रविनन्दिनी वहीं : श्याम यमुना में जब रक्त साड़ी वाली श्वेत देह का संयोग हुआ तब प्रत्यक्ष ही त्रिवेणी की छटा आ गयी। 'पद्माकर' की एक सवैया भी कुछ कुछ इसी भाव की है।

१४०—सिवार : एक प्रकार की काली घास जो पानी में ही बढ़ती और बहती रहती है।

१४१—दक्षिणता : कुशलता।

१४२—मिटा : मिटा कर।
बरोनियों : पलकों के रोम।

१४३—अम्बर : कपड़ा
नर्म सखा : शृंगार रस में सहायक सहचर।
नोट—इस युग्मक का भाव यह है कि जल ने ताम्बूल, कज्जल, और भड़कीली साड़ी के कृत्रिम शृंगार को मेट कर लाल ओंठ, कजरारी आँखों और प्रभापूर्ण सुगढ़ अंगों का स्वाभाविक सौन्दर्य अच्छी तरह प्रकट कर दिया। गोपियाँ श्रीकृष्ण के सामने अपनी स्वाभाविक माधुरी ही प्रकट करना चाहती थीं न कि कृत्रिम। इसीलिये जल नर्म सखा के समान सुखमय सहायक जान पड़ा।

१४५—सैकत : रेतीला किनारा।

१४६—अभिनन्दनीय : वन्दनीय, प्रशंसनीय।
त्रिशक्तियों से बढ़ के : उमा, रमा, ब्रह्माणी से भी बढ़ कर।

१४७—मुनीन्द्र-वन्द्या : मुनीशों की भी वन्दनीय।

१४९—स्वकन्यका-केलि न देख वे सके : श्रीकृष्ण के साथ अपनी कन्या यमुना को क्रीड़ा करते हुए देखना उनके लिये सम्भव न था, इसीलिये सूर्य भगवान् उदित ही न हो सके।

सुयामिनी : वह शरत् पूर्णिमा की रात।
ब्रह्म-निशा : ब्रह्मा की रात्रि जो एक हज़ार चतुर्युगियों के बराबर होती है।

१२०—ललाम गोलोक : कहा जाता है कि गोपियाँ श्रीकृष्ण की अंश शक्तियाँ ही हैं जिनके साथ वे गोलोक में (जो कि सत्यलोक से भी श्रेष्ठ है) नित्य रास किया करते हैं।

१२१—बिम्ब-प्रतिबिम्ब : गोपियाँ श्रीकृष्ण की ही प्रतिबिम्बमात्र थीं। उनसे भिन्न कोई स्वतंत्र व्यक्तियाँ नहीं।
ब्रज आरसी लसा बना हुआ बाल बिलास रास था : जैसे बालक दर्पण पर पड़े हुए अपने प्रतिबिम्बों के साथ क्रीड़ा किया करता है, उसी प्रकार ब्रज में बसे हुए गोपिका रूप प्रतिबिम्बों के साथ भगवान् ने विलास किया था।

१२३—उडु-मण्डली : तारक-मण्डली।
अद्यावधि : आज तक।